नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

# बिगुल

मासिक समाचार पत्र • वर्ष 3 अंक 7
अगस्त 2001 • तीन रुपये • बारह पृष्ठ

### केन्द्र व राज्य कर्मचारियों की एक दिनी हड़ताल

### ट्रेड यूनियन महासंघों की रस्म अदायगी का एक और अध्याय खत्म

## झूठी आशा छोड़ो, सही लड़ाई से नाता जोड़ो

(सम्पादकीय अग्रलेख)

पिछली 25 जुलाई को केन्द्र सरकार कर्मचारी-मज़दूर महासंघ और अखिल भारतीय राज्य सरकारी कर्मचारी महासंघ के संयुक्त आह्वान पर आयोजित एक दिनी देशव्यापी हड़ताल के जरिये ट्रेड यूनियन महासंघों द्वारा निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों के खिलाफ संघर्ष की रस्म अदायगी का एक और अध्याय खत्म हुआ। एक बार फिर यही सच्चाई पहले से भी अधिक नंगे रूप में उजागर हुई कि संसदीय वामपंथी पार्टियों से जुड़ी यूनियनों का नेतृत्व हो या अन्य चुनावी पार्टियों से जुड़ी यूनियनों का नेतृत्व, सबका एक ही लक्ष्य है – मज़दूर आंदोलन को उसके असली लक्ष्य से भटकाकर संकटग्रस्त पूंजीवादी व्यवस्था की सेवा करना।

इस बार की हड़ताल को सीटू, एटक, इंटक, बी.एम.एस., एच.एम.एस. जैसे मठाधीश महासंघों के साथ नये मुल्ला 'ऐक्टू' जैसे भितरघातियों ने एक 'प्लेटफार्म' से नेतृत्व दिया। हड़ताल का मुख्य मुद्दा निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों का विरोध ही था। लेकिन यह विरोध के नाम पर एक और स्वांग ही था, इसे समझने के लिए महज कुछ तथ्य ही काफी हैं।

इस हड़ताल की बुनियाद ही मज़दूर आन्दोलन के बंटवारे की जमीन पर रखी गयी। सार्वजनिक व निजी क्षेत्र के औद्योगिक मज़दूरों को इस हड़ताल से बाहर रखा गया। इन्हें 25 की हड़ताल के साथ जोड़ने के बजाय 16 मज़दूर संगठनों और उद्योगवार महासंघों ने एक दिन पहले संसद पर एक प्रदर्शन की कवायद करवायी। इसके साथ ही 23 व 24 जुलाई को रक्षा कर्मियों की हड़ताल के साथ भी कोई तालमेल बनाने की कोशिश नहीं की गयी।

बैंक व बीमा की यूनियनों को भी इसमें शामिल नहीं किया गया। रेलवे कर्मचारियों का भी हड़ताल के लिए आह्वान नहीं किया गया। शिक्षक यूनियनें भी अलग-थलग पड़ी रहीं और वेतन कटौती से डरे डाककर्मियों ने भी सिर्फ आधे-अधूरे मन से ही हड़ताल में शिरकत की। इसमें भी देखा यह गया कि आम डाककर्मी वेतन कटौती से उतना नहीं डर रहे थे, जितना जगह-जगह नेतृत्व ने उन्हें डराया। इस तरह 25 जुलाई को हड़ताल नहीं हड़ताल की खानापूरी हुई।

जब संघर्ष के नाम पर संघर्ष का प्रहसन करना हो तो फिर तैयारियों की क्या जरूरत? हड़ताल का दिन 27 मई को ही केन्द्र व राज्य कर्मचारी महासंघों के कन्वेंशन में तय हो चुका था, लेकिन आखिरी दिन तक कर्मचारियों में ऊहापोह की स्थिति बनी रही। अखबारी हवाबाजियां तो खूब की गयीं लेकिन हड़ताल की कोई ठोस तैयारी नहीं की गयी। नतीजा, 25 जुलाई को हवा में गत्ते की तलवारें भांज दी गयीं और सफलता की तुरही बजा दी गयी।

नेतृत्व के इस लिजलिजेपन, बदनीयती, गद्दारियों के इतिहास और आधी-अधूरी तैयारियों के बावजूद

हड़ताल में शामिल आम कर्मचारी पूरे जुझारूपन और सच्चे मन से हड़ताल में शामिल हुए। इसका कारण स्पष्ट है कि आम कर्मचारी निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों से पैदा हुए अपने अस्तित्व के संकट को महसूस करने लगा है। भविष्य को लेकर एक बेचैनी उसके भीतर उमड़-घुमड़ रही है। यही कारण है कि नेतृत्व के असली चरित्र को बखूबी समझते हुए भी वह विकल्पहीनता में संघर्ष के हर आह्वान को पूरी ताकत से समर्थन दे रहा है। कहने की जरूरत नहीं कि आम कर्मचारियों के भीतर मौजूद इस बेचैनी और गुस्से को ट्रेड यूनियन घाघ भी अपनी तजुर्बेकार नज़र से ताड़ रहे हैं, इसलिए वे प्रेशर कुकर की सीटी के रूप में हड़ताल-प्रदर्शनों का इस्तेमाल कर उनके गुस्से के दाब को कम कर विस्फोटक बनने से रोक रहे हैं।

यही वह महत्वपूर्ण सेवा है जिसकी आज के संकटग्रस्त भारतीय पूंजीवाद और विश्व पूंजीवाद को बेसाख्ता ज़रूरत है। आज का यह संकट उस संकट से गुणात्मक रूप से अलग है जब 1968 में इसी तरह केन्द्र व राज्य सरकार के कर्मचारियों की एक संयुक्त हड़ताल हुई थी। उस समय भारतीय पूंजीवाद की बीमारी के लक्षण पहली बार उभरकर सामने आये थे जिसके इलाज के रूप में बैंक-बीमा के राष्ट्रीकरण और आगे चलकर कोयला खदानों के राष्ट्रीकरण की खुराक दी गयी थी। लेकिन दवा की यह खुराक बीमारी को कुछ समय के लिए सिर्फ दबा सकती थी, उसे दूर नहीं कर सकती थी।

मुनाफे और बाजार के तंत्र का तर्क अन्दर ही अन्दर 'पब्लिक सेक्टर' पूंजीवाद के ढांचे को खोखला बनाता गया। आखिरकार वह नौबत आ ही गयी जब नियंत्रित घरेलू बाजार और विदेशी पूंजी और अन्य आयातित विदेशी मालों के हमलों से सुरक्षा प्रदान करने वाली भारतीय पूंजीवाद की प्राचीरें ध्वस्त होने लगीं और पूरी तरह खुले पूंजीवाद का नया ढांचा खड़ाकर अपना अस्तित्व बचाने की कवायदें गत सदी के आखिरी दशक में शुरू हुईं। अन्तरराष्ट्रीय मुद्राकोष और विश्व बैंक के नुस्खों पर अमल करते हुए "संरचनात्मक समायोजन कार्यक्रम" के तहत "उदारीकरण" निजीकरण की नीतियों पर अमल इसी कवायद के हिस्से हैं।

निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों को लागू करना भारतीय शासक पूंजीपति वर्ग के अपने अस्तित्व की ज़रूरत है। अपना अस्तित्व बचाने के लिए पूंजीपति वर्ग खुद ही खड़े किये गये पुराने ढांचे को बेरहमी से तोड़ रहा है और उसकी ईंटों से नया ढांचा खड़ा कर रहा है। लेकिन, मज़दूर वर्ग के प्रतिरोध आन्दोलन पर आज काबिज उसके रहनुमा मज़दूर वर्ग के अस्तित्व को बचाने के लिए 'पब्लिक सेक्टर' के उसी जर्जर ढांचे को बचाने की लड़ाई लड़ रहे हैं, वह भी बिना कोई व्यूह-रचना किये और हथियारों के नाम पर गत्ते की तलवारें हाथ में लेकर। यह पूरी तरह जाहिर है कि निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों के

(पेज 10 पर जारी)

### भीतर के पन्नों पर

1. चीन में जब सत्ता मजदूरों के हाथ में थी- पृ. 3
2. पार्टी की बुनियादी समझदारी- पृ. 4
3. चोर दरवाजे से मजदूरों पर हमले जारी -पृ.5
4. पंजाब में भट्ठा मजदूरों के उत्पीड़न और लूट की दर्दनाक दास्तान-पृ. 6
2. 26 जनवरी, 15 अगस्त पृ. 12

### विकास मुनाफाखोरों का, विनाश मेहनती जनता का – 2

## आर्थिक "सुधार", यानी बेरोजगार ही बेरोजगार

### उदारीकरण के दस वर्ष

मुकुल

जिन संकटों ने विश्व पूंजीवाद के छोटे-बड़े चौधरियों को भूमण्डलीकरण की नयी आर्थिक रणनीति अपनाने के लिए बाध्य किया, वे संकट के इस नये दौर में न केवल गंभीर हो गये हैं, बल्कि असाध्य रोग बन गये हैं। हर निदान दीर्घकालिक विश्वव्यापी मन्दी में सिर्फ कुछ क्षणिक सुधारों के झटके साबित हो रहे हैं। साम्राज्यवादी अपने संकटों का ज्यादा से ज्यादा बोझ भारत जैसे देशों की ग़रीब जनता को निचोड़कर हल्का कर लेना चाहते हैं और साथ ही अपने देशों के मेहनतकश अवाम को भी आखिरी बूंद तक चूस लेना चाहते हैं। नतीजा सामने है। भारत में नयी आर्थिक नीतियों पर, अमल के पिछले एक दशक ने सिद्ध कर दिया है कि यहां के इतिहास का एक नया विनाशकारी, अधकारमय दौर शुरू हो चुका है।

एक दशक पूर्व नरसिंहराव-मनमोहन सिंह एण्ड कम्पनी (कांग्रेसी सरकार) ने अन्तर्राष्ट्री मुद्राकोष और विश्वबैंक द्वारा प्रायोजित 'ढांचागत समायोजन कार्यक्रम' की आधारशिला रखी थी। इसका मूलमंत्र था – आर्थिक क्षेत्र में सरकार की भूमिका को निजी क्षेत्र के सहयोगकर्ता और प्रबन्धन तक सीमित रखाना, अर्थव्यवस्था को विदेशी निवेश के लिए पूरी तरह खोलना, आयात नियंत्रण समाप्त करना, सब्सिडी खत्म करने और शिक्षा तथा स्वास्थ्य जैसी बुनियादी सेवाओं को भी मुनाफाखोरों के हवाले करना।

दस वर्षों में विकास का नक्शा सामने है। 1990-91 में एक डालर

(पेज 8 पर जारी)

बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!

# आपस की बात

## "वे सब कुछ करने को तैयार, सभी अफसर उनके"

आये दिन ऐसी घटनाएं घटती रहती हैं जो इस बात को बार-बार प्रमाणित करती हैं कि यह व्यवस्था मेहनत करने वालों की नहीं, बल्कि पूंजीवादी लुटेरों की है और पुलिस-प्रशासन-सरकार, सभी उन्हीं की सेवा में तत्पर हैं। अब तो वे उनकी ही भाषा बोलने लगे हैं। नमूने के तौर पर ऐसी ही एक घटना की चर्चा मैं यहां करने जा रहा हूं। मूल चर्चा से पहले एक दूसरी घटना की भी चर्चा आवश्यक है।

रुद्रपुर (ऊधमसिंह नगर) स्थित जनरेटर बनाने वाले कारखाने 'होण्डा पावर प्रोडक्ट्स लि.' में पिछले छः महीने के भीतर मज़दूरों के लिए तीसरी बार सवेतन कार्यबन्दियां (वेतन सहित सामूहिक छुट्टी) हो चुकी है, चौथी अगस्त में होने वाली है। ऐसी ही कार्यबन्दियां 'महेन्द्रा एण्ड महेन्द्रा' के महाराष्ट्र की इकाइयों में, 'बजाज आटो लि.' में 'टेल्को' आदि में भी की जा रही है। सभी जगह मंदी और प्रतिस्पर्द्धा का रोना रोया जा रहा है। जहां यूनियनें हैं, वहां फिलहाल सवेतन कार्यबन्दियां (वह भी मज़दूरों के लिए, स्टाफ व आफिसरों को अपने वाहन से व टिफिन बाक्स लेकर आना पड़ता है, यानी कैण्टीन व परिवहन की सुविधा ठेके पर होने के कारण बन्द रहती है।) हो रही हैं। लेकिन जहां यूनियनें नहीं हैं वहां तो और अन्धेरगर्दी है। और श्रम विभाग व प्रशासन मौन साध बैठा रहता है।

उदाहरण के लिए यहां से निकट किच्छा में स्थित 'रामा विजन लि.' में देखें। यहां पूरे माह 208 घण्टे काम का नियम बन गया है (प्रतिदिन 8 घण्टे नहीं)। इसके लिए महीने में कुल 14-15 दिन कारखाना चलाया जाता है, वह भी किश्तों में (यानी फंसना तो पूरे माह है)। बीच-बीच में मनमाने ढंग से प्रबन्धतन्त्र 6-7 दिन की छुट्टियां घोषित कर देता है। यहां के मज़दूरों को इन्हीं कार्यवाहियों में लगातार 12-14 घण्टे काम करके 208 घण्टे पूरे करने होते हैं।

यह सब कुछ डी.एम./एस.डी.एम., डी.एल.सी./ए.एल.सी. की मौन स्वीकृति से ही चल रहा है। ये घटनाएं मज़दूरों पर मालिकों के बढ़ते दबाव और निरंकुशता की ज़िन्दा मिसाल है। लेकिन मैं एक दूसरी महत्वपूर्ण घटना का उल्लेख करने जा रहा हूं।

होण्डा कारखाने में पिछले कार्यबन्दी (25-28 जुलाई,01) और कारखाने से कुछ महत्वपूर्ण विभागों के स्थानान्तरण की प्रक्रिया के खिलाफ 'श्रीराम होण्डा श्रमिक संगठन' ने अवकाश के बावजूद 25 जुलाई को फैक्टरी गेट पर प्रदर्शन किया, आम सभा की और जुलूस की शक्ल में जिलाधिकारी कार्यालय पहुंचकर जिलाधिकारी महोदय को ज्ञापन दिया और वार्ता की। मैं उसी वार्ता का उल्लेख यहां कर रहा हूं।

कारखाने के एल्युमिनियम मशीन शाप सहित कुछ विभागों व भविष्य में पूरे कारखाने के स्थानान्तरण की आशंका के सन्दर्भ में जिलाधिकारी महोदय का तर्क था कि 'यदि कोई दुकानदार अपनी दुकान बन्द करना तथा कहीं और खोलना चाहता है तो भला प्रशासन इसमें क्या करे? मेरी दुकान होती तो मैं भी वहीं लगाता जहां अच्छी चलती।' इस वाहियात तर्क पर यूनियन पदाधिकारी सकते में आ गये। फिर लोगों ने जब यह कहा कि यह कारखाना है, कोई दुकान नहीं। इस पर ढेरों कानून बने हुए हैं। इसे सब्सिडी देने से लेककर तरह-तरह से करों में सरकार छूट देती है। जनहित की रक्षा और प्रबन्धतंत्र के मनमानेपन को रोकने के लिए प्रशासन पूरी तरह जिम्मेदार होता है। और फिर अन्याय रोकने के लिए ही तो प्रशासन है।

डी.एम. साहब ने फिर पैंतरा बदला और कहा कि उन्हें इस बारे में क़ानूनों की उतनी जानकारी नहीं है। यदि शिफ्टिंग रोकने का कोई क़ानून हो तो उसे बताइयेगा, मैं उसी तरह काम करूंगा। मज़दूर शांतिपूर्ण वार्ता करेंगे तो क़ानून न जानने का तर्क और लुटेरों के लिए सारे क़ानून ताक पर। वाह डी.एम. साहब वाह! अब मज़दूर आपको क़ानून बताएंगे (वक्त आने पर मज़दूर वह भी करेगा और अपना नया क़ानून भी गढ़ेगा)।

इसी सन्दर्भ में एक दूसरी घटना भी गौरतलब है। इसी जिले के काशीपुर में स्थित टेलीविजन निर्माता 'सलोरा' कारखाने के प्रबन्धकों ने वहां धोखे (व गैरक़ानूनी तरीके) से तालाबन्दी कर दी। वहां मज़दूर रातों-रात सड़क पर आ गये। उन्होंने न्याय की आवाज़ लगाई, क़ानूनी व आन्दोलनात्मक कार्रवाइयों में उतर पड़े। शुरू से ही प्रशासन और श्रम विभाग उन्हें हतोत्साहित करता रहा। इसी क्रम में उन्होंने उत्तरांचल राज्य के मुख्यमंत्री नित्यानन्द स्वामी से मुलाकात की और ज्ञापन दिया। बाद में मुख्यमंत्री द्वारा पत्रकारों को दिया गया वक्तव्य भी गौरतलब है। उन्होंने कहा कि 'ब्लैक एण्ड व्हाइट टेलीविजन' का दौर खत्म हो गया है तो फिर सलोरा मालिक क्या करें? जिस दिन मुख्यमंत्री महोदय ने यह बयान दिया था, उसी दिन दैनिक अखबारों में 'सलोरा' की नोएडा इकाई में 'ब्लैक एण्ड व्हाइट टी.वी.' के लिए भर्ती का विज्ञापन (वाण्ट) निकला था। वैसे काशीपुर इकाई में भी '94 तक रंगीन टी.वी. बन चुकी हैं।

जिलाधिकारी और मुख्यमंत्री के इन बयानों पर गौर किया जाए तो एक ही सच्चाई सामने आती है कि उन्हें मज़दूरों की तबाही से कुछ लेना-देना नहीं है। यह बात और ज्यादा पुख्ता तरीके से प्रमाणित होती है कि आज सरकार और प्रशासन खुलकर मालिकों के पक्ष में खड़े हो चुके हैं। पहले तो कुछ लोक-लज्जा बची भी अब वे पूरे नंगे हो चुके है। वैसे जर्मनी के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी कवि व नाटककार ब्रेख्त ने 60 साल पहले ही लिखा था:

*वो सब कुछ करने को तैयार*
*सभी अफसर उनके*
*जेल और सुधारघर उनके*
*सभी दफ्तर उनके ...:*
*क़ानूनी किताबें उनकी*
*कारखाने हथियारों के*
*पादरी प्रोफेसर उनके*
*जज और जेलर तक उनके*
*सभी अफसर उनके ...*

**विजय कुमार**
रुद्रपुर (ऊधमसिंह नगर)

## मज़दूर-किसान मुक्ति का वाहक

मैंने आपका 'बिगुल' पेपर पढ़ा। काफी नई राहें दिखलाई दीं। मैं चाहता हूं कि हमारी संस्था को साथ जोड़ लें। हमने भी 'बुन्देलखण्ड ग्रामीण मज़दूर संगठन' बनाया है। कुछ समाचार मैं यहां के बारे में भी भेजना चाहता हूं। 'बिगुल' मज़दूर-किसान शोषण को उजागर करके उसकी मुक्ति का रास्ता दिखलाता रहेगा। मेरे अन्य साथी भी 'बिगुल' मंगवाने के इच्छुक हैं।

**कैलाश प्रसाद रायकवार**
बुन्देलखण्ड ग्रामीण मज़दूर किसान संगठन
टीकमगढ़ (म.प्र.)

## प्रशंसनीय अखबार

आप द्वारा भेजा जा रहा 'बिगुल' काफी पसन्द किया जा रहा है। हमारी तरफ से कार्यालय के सभी साथियों को लाल सलाम।

**का. महेश "महर्षि"**
इफ्टू कार्यालय
जिला श्री गंगानगर (राज.)

## मज़दूरों की पुलिसिया लूट

मैं उत्तर प्रदेश का रहने वाला हूं और लुधियाना में एक दुकान पर मज़दूरी करता हूं। यहां मैंने देखा कि हम ग़रीबों का खून हमारे मालिक ही नहीं कानून और माहौल की सुरक्षा करने वाली पुलिस भी निचोड़ती है। यहां तक कि बैंक और डाकखाने में भी हमारा काम कराने के लिए हमें लूटा जाता है। सबसे खराब स्थिति तो लुधियाना रेलवे स्टेशन पर है जहां पुलिस वाले किसी न किसी बहाने से, पूरब से या अन्य जगहों से आने वाले हमारे मज़दूर भाइयों को पकड़ लेते हैं और पैसे लिए बिना उन्हें छोड़ते नहीं। यहां, लुधियाना रेलवे स्टेशन पर उतरने वाले हम मज़दूरों के साथ पुलिस कैसा व्यवहार करती है यह मैं बिगुल के माध्यम से अपने मज़दूर भाइयों से बताना चाहता हूं।

लुधियाना रेलवे स्टेशन की टिकट खिड़की पर भारी भीड़ मज़दूरी के लिए दूसरे राज्यों से आये मज़दूरों की होती है। इन लंबी कतारों के इर्द-गिर्द हाथ में डंडा लिए 10-12 पुलिस वाले मंडराते रहते हैं जो बात-बे-बात एक-आध डंडा जमाकर पहले आतंक का माहौल बनाते हैं फिर बाहर से आये मज़दूरों से 100-150 रुपये (जो निश्चित ही टिकट के नियत दाम से अधिक होता है) वसूल कर खिड़की की जगह सीधे अन्दर से टिकट लाकर दे देते हैं। दूसरे जो खुद खरीदना चाहते हैं उन्हें लम्बे समय से कतार में खड़े रहना पड़ता है और जो मानसिक परेशानी झेलनी पड़ती है वह अलग से।

गाड़ी पर सवार होने के बाद यदि हमें सीट मिल भी जाती है तो वह सुरक्षित नहीं रहती है। क्योंकि वहां भी पुलिस वाले कुछ लोगों से पैसे लेकर उन्हें सीट दिलवाने के लिए हमें डंडे के बल पर उठा देते हैं। बात यहीं नहीं रुकती वे टिकट चेकर के साथ मिलकर टिकट चेक करते हैं और लोगों के सही टिकटों को गलत बताकर उनसे जबर्दस्ती पैसे वसूलते हैं। यहां बाहर से जाने वाले हम मज़दूरों को फैक्टरियों, दुकानों से लेकर रेलवे स्टेशनों तक हर जगह भीषण रूप से लूटा जा रहा है।

**अमरजीत पटेल**
लुधियाना

## बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियां

1. 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मजदूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मजदूर आंदोलन के इतिहास और सबक से मजदूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूंजीवादी अफवाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।

2. 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मजदूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।

3. 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मजदूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।

4. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूंजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाजों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की कतारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।

5. 'बिगुल' मजदूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।

## बिगुल यहां से प्राप्त करें

♦ शहीद पुस्तकालय, जनगण होम्यो सेवा सदन, **मर्यादपुर, मऊ** ♦ मौर्या बुक स्टाल, सआदतपुरा (निकट रोडवेज), मऊनाथभंजन, **मऊ** ♦ जनचेतना, जाफरा बाजार, **गोरखपुर**
♦ विजय इन्फारमेशन सेन्टर, कचहरी बस स्टेशन, **गोरखपुर** ♦ विश्वनाथ मिश्र, नेशनल पी.जी. कालेज, **बड़हलगंज**, गोरखपुर
♦ जनचेतना, डी 68, निरालानगर **लखनऊ** ♦ जनचेतना स्टाल, काफी हाउस के पास, हजरतगंज, **लखनऊ**, (शाम 5 से 8·30) ♦ राहुल फाउण्डेशन, 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, **लखनऊ** ♦ विमल कुमार, बुक स्टाल, निकट नीलगिरि काम्प्लेक्स, ए ब्लाक, इंदिरानगर, **लखनऊ** ♦ मदन पाल, दुकान नं. -28, नयी सब्जी मंडी, पुराने कपड़े का मार्केट, **रुद्रपुर** (ऊधमसिंह नगर)♦ रामपाल सिंह, भारतीय जीवन बीमा निगम, आवास विकास, **रुद्रपुर** (ऊधमसिंहनगर) ♦ रवीन्द्र कुमार, भारतीय जीवन बीमा निगम, शाखा कार्यालय, पन्तनगर ♦ प्रोग्रेसिव बुक सेंटर, विश्वनाथ मंदिर गेट, बी.एच.यू. **वाराणसी** ♦ राजीव वर्मा, स्टूडेण्ट एजुकेशनल सेण्टर, मैनाताली (पुलिस चौकी के पास) मुगलसराय ♦ राजेन्द्र प्रसाद, रेणु मेडिकल की गली, मुख्य सड़क, **रेणुकूट**, सोनभद्र ♦ सत्यम वर्मा, 81, समाचार अपार्टमेंट, मयूर विहार-एक, **नई दिल्ली** ♦ ललित सती, एल.आई.सी., **फैज रोड शाख, दिल्ली**♦ नई किरण पुस्तक भंडार, एफ-56, हरकेश नगर, ओखला, नई दिल्ली, ♦ डी. के. सचान, कृषि विज्ञान केंद्र, विकास भवन, नई कलक्ट्रेट, **गाजियाबाद** ♦ सुनील कुमार सिंह, सेक्टर-12 बी, 3159, बोकारो इस्पातनगर, **बोकारो** ♦ गणपतलाल, ग्राम काजी रसूलपुर, पो. तेघड़ा, **बेगूसराय** ♦ पीपुल्स बुक हाउस, पटना कालेज के सामने, **पटना** ♦ समकालीन प्रकाशन (प्रा.) लि. पुस्तक बिक्री केन्द्र, आजाद मार्केट, पीरमुहानी, **पटना** ♦ विमर्श, 22, स्वास्तिक काम्प्लेक्स, रसल चौक ,**जबलपुर** ♦ नरभिन्दर सिंह, द्वारा डा. सुखदेव हुन्दल, ग्रा/पो. सन्तनगर, जिला-सिरसा ♦ पंकज, प्लाट नं. 33, सेक्टर-15, सोनीपत (हरियाणा) ♦ सुखविंदर द्वारा कॉ0 दशरथ लाल, मकान नं 14, लेबर कॉलोनी, गिल रोड, लुधियाना (पंजाब) ♦ राकेश गोरखा, सरस्वती पुस्तक मंदिर, प्रधान नगर, सिलीगुड़ी, **दार्जीलिंग** ♦ बुक मार्क, 6, बंकिम चटर्जी स्ट्रीट, **कलकत्ता** ♦ शर्मा बुक स्टाल, थाना रोड, चराली, तिनसुकिया *नेपाल* ♦ विश्व नेपाली पुस्तक सदन, श्रवनपथ, बुटवल, रुपनदेई, नेपाल ♦ विशाल पुस्तक सदन, बिजुवार बाजार, प्यूठान राप्ती अंचल ♦ विशाल पुस्तक पसल, अस्पताल लाइन, बुटवल, लुम्बिनी, नेपाल ♦ लक्ष्मी नारायण मिश्र, 853, हिरन नगरी, सेक्टर4, पूजानगर, उदयपुर (राज.) •

# चीन में जब सत्ता मज़दूरों के हाथ में थी

आज जबकि लातिनी अमेरिका से लेकर प्राग तक साम्राज्यवादी भूमण्डलीकरण के खिलाफ प्रतिरोध बढ़ता जा रहा है और तमाम देशों में क्रान्तिकारी आन्दोलन विकसित हो रहे हैं, तब यह वृतान्त कि किस प्रकार चीन के वे अति साधारण लोग उठ खड़े हुए और समाज के नियन्ता बन बैठे, उस भविष्य के लिए गहरा मायने रखता है – जिसकी लड़ाई हम लड़ रहे हैं। विशेषकर यह इतिहास उन युवाओं के हाथों तक अवश्य ही पहुंचना चाहिए जो व्यवस्था के विरोध में सड़कों पर उतरने की हिम्मत और बहादुरी दिखाते हों।

चीन (1949 की मुक्ति से लेकर 1976 की अवधि के) पच्चीस वर्षों तक एक समाजवादी देश था – जबकि प्रतिक्रियावादी ताकतों ने तख्ता पलट के जरिये सत्ता पर कब्जा जमा लिया और पूंजीवाद की पुनर्स्थापना की। समाजवाद में समाज को संचालित करने की शक्ति मज़दूरों और किसानों के हाथ में थी। इस दौर के वृतांतों को पढ़ना, एक ऐसे भावी नक्षत्र में सैर करने की तरह है, जहां सपने सच हो चुके थे। सदियों पुराने दमन-उत्पीड़न की जड़ें खोदी जा रही थीं। माओ की क्रान्तिकारी दिशा और चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की अगुवाई में आम जनता के प्रयासों से बेरोजगारी, स्त्री उत्पीड़न, पर्यावरण की तबाही, स्वास्थ्य सेवाओं की दयनीय स्थिति या अनुपलब्धता और सर्वहारा के काम करने की जानलेवा परिस्थितियां जैसी गहरे धंसी सामाजिक समस्याओं का कदम- ब-कदम समाधान किया जा रहा था।

सत्ता में आते ही नयी क्रान्तिकारी सरकार ने देश के प्रत्येक काम करने लायक व्यक्ति को रोजगार की गारण्टी दी। देश भर में चीन की कम्युनिस्ट पार्टी और नयी सरकार बेरोजगारी से मुकाबला करने के लिए तुरन्त कमर कसकर मैदान में उतर पड़ी। लिखना-पढ़ना सिखाने, आम शिक्षा को बेहतर बनाने और साथ ही क्रान्तिकारी सिद्धान्तों के अध्ययन के लिए हर जगह कक्षाएं आयोजित की गयीं।

क्रान्ति के बाद जैसे ही अर्थव्यवस्था सुधरी, कुशल कामगारों को तत्काल रोजगार मिलने लगा। जो अकुशल मज़दूर थे उनके रोजगार के लिए वाहन चालिकी, स्वास्थ्य सेवा, निर्माण तथा विद्युत यंत्र संचालन के क्षेत्र में सरकार ने विशेष प्रशिक्षण कार्यक्रमों की शुरुआत की। लाखों लोगों ने इन प्रशिक्षण कार्यक्रमों में हिस्सा लिया और आगे चलकर नौकरियां प्राप्त कीं। ऐसी योजनाओं को फण्ड दिया गया, जहां बेरोजगार लोग दस्तकारी उत्पादन के कोआपरेटिव बनाकर काम कर सकें। कुछ दूसरों को सड़क, रेलवे के निर्माण कार्य में, नदियों से नहरें निकालने और खेल के मैदान व पार्क आदि बनाने के काम में लगाया गया। सरकार ने उन लोगों को भौतिक सहायता प्रदान की जो गरीब थे और जिन्हें अब तक रोजगार नहीं मिला था।

1956 तक यानी सिर्फ सात साल के भीतर आते-आते बेरोजगारी को बुनियादी रूप से हल किया जा चुका था। अर्थव्यवस्था को समूची जनता की ज़रूरतों को पूरा करने के उद्देश्य से और पूरे समाज के परिवर्तन के अंग के रूप में योजनाबद्ध और तर्कसम्मत ढंग से विकसित किया गया। पुराने समाज में श्रम-उत्पादकता बढ़ने का अर्थ यह होता था कि लोगों को काम से निकाल बाहर कर दिया जाता। परन्तु समाजवाद के आने के बाद जो मज़दूर तकनीकी सुधार के चलते काम से बाहर हो जाते उन्हें राज्य की एकरूप योजना के तहत किसी दूसरी जगह उत्पादन बढ़ाने के काम में नौकरी मिल जाती। चीन में कोई फाजिल श्रम शक्ति नहीं थी।

चीनी समाज को मुक्त करने और सत्ता पर कब्जा करने के लिए क्रान्ति एक बहुत बड़ी छलांग थी। परन्तु जैसा कि माओ ने कहा था कि, यह वर्गों के खात्मे व हर तरह के शोषण उत्पीड़न के आधार को समाप्त करने के लिए जारी संघर्ष में महज एक पहली सीढ़ी भर भी। आगे चलकर एक तीखा वर्ग-संघर्ष फूट पड़ा। ठीक पार्टी के भीतर ही कुछ ऐसे लोग थे – जो चीन को एक आधुनिक पूंजीवादी देश के रूप में विकसित करना चाहते थे, जो शोषण की एक ऐसी व्यवस्था कायम करना चाहते थे-जहां मज़दूर-किसान उत्पादन बढ़ाने के लिए महज घोड़ों की तरह जोत दिये जायें। और कुछ लोग ऐसे थे जो माओ के नेतृत्व में लगातार वर्ग-संघर्ष जारी रखने एवं ग़ैरबराबरी वाले वर्गीय समाज की जड़ें खोदने के लिए जनता की आबादी को गोलबन्द करने की लड़ाई लड़ रहे थे। खुद कम्युनिस्ट पार्टी के अन्दर संघर्ष इस बात पर केन्द्रित था कि चीन समाजवाद का निर्माण करेगा अथवा पूंजीवाद की राह पकड़ लेगा।

मरिया अन्तोनियता माचियोचि (Maria Antonietta Macchiochi) की पुस्तक "डेली लाइफ इन रिवोल्युशनरी चाइना" में वर्ग-संघर्ष के ऐसे तमाम वृतान्त मिलते हैं जिसे लेखिका ने '70 के दशक की शुरुआत में अपनी चीन यात्रा के दौरान देखा-सुना था। तियानजिन की 46 वर्षीय मज़दूर स्त्री लिन तियानसी ने माचियोचि को अपनी यह कहानी सुनायी, "मैं फैक्टरी संख्या 2 की रंगाई और बुनाई (Dyeing and Weaving) कारखाने में काम करने वाली मज़दूर औरत हूं। मैं यहां 17 वर्ष की उम्र में उस वक्त से काम कर रही हूं जब इस फैक्टरी पर पूंजीपतियों का कब्जा था। मेरे पिता बीमारी से मर गये क्योंकि उन्हें ठीक से इलाज नहीं मिल पाया और मुझे पांच लोगों का खर्चा चलाने के नाम पर मिलने वाली तनख्वाह इतनी कम थी कि उसमें मुश्किल से दो लोगों का गुजारा भर हो पाता। हमें सेम, दही और आलू खाकर रहना पड़ता और हम हमेशा भूखे रहते। जाड़े के लिए हमारे पास कम्बल नहीं थे और हमारा जाकेट बहुत पतला था। ठंड और भूख हमारे हर दिन के साथी थे। फैक्टरी जाने के लिए मैं रोज 4 बजे भोर में उठती और दिन ढले घर लौटती। मैं हमेशा इस बात से डरी रहती कि कहीं औरों की तरह मुझे भी तपेदिक न पकड़ ले क्योंकि इसका अर्थ होता कि काम से मेरी हमेशा के लिए छुट्टी। मज़दूर हार्निया और गठिया के रोग से पीड़ित होते। लेकिन इस डर से वे अपनी बीमारी छिपाये रहते कि कहीं उन्हें नौकरी से निकाल न दिया जाये। यहां तक कि शौचालय में ज़रूरत से ज्यादा वक्त लगने पर भी नौकरी से बाहर कर दिये जाने का अंदेशा बना रहता था। स्थिति इतनी बुरी थी कि किसी को विरोध करने का साहस न होता। पुलिस भी मालिक का हथियार थी। पूंजीपतियों ने कारखाने में एक बिजली की घण्टी लगा रखी थी जिसके जरिये वे मज़दूरों को गिरफ्तार करने के लिए पहरेदारों को इकट्ठा कर लेते। वे हमारे लोगों के दम पर ऐश्वर्यपूर्ण जीवन बिता रहे थे और हम जानवरों की ज़िन्दगी जी रहे थे। वे मुर्गी, बत्तख और मछली खाते और बड़े-बड़े मकानों में रहते। हम इन्सान कूड़ा-करकट की तरह थे, मानवता की तलछट थे।"

"1949 की मुक्ति हम मज़दूरों के लिए स्वर्गलोक की पहली सीढ़ी थी। परन्तु इसके बाद शीघ्र ही फैक्टरी में दो लाइनों का संघर्ष शुरू हो गया। बुर्जुआ दक्षिणपंथियों (जो चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के अन्दर मौजूद थे और पूंजीवादी पुनर्स्थापना के प्रयासों में लगे हुए थे) के हाथों में अभी भी का बीज बो रहे थे, हमें बता रहे थे कि हमारी ज़िन्दगी पहले से बदतर होने वाली है। यह घृणास्पद था, गुस्से से मैं पागल हो उठती लेकिन इसका प्रतिवाद मैं नहीं कर पाती। अधिक से अधिक मैं यह कर सकती थी कि उन्हें बता दूं, "आओ देखो हम पहले से कहीं अच्छी ज़िन्दगी जी रहे हैं।" परन्तु सैद्धान्तिक ज्ञान न होने के चलते हम अपनी आलोचनाओं को सूत्रबद्ध नहीं कर पाते।"

पार्टी क्रान्तिकारियों के मार्गदर्शन में मज़दूरों ने दर्शनशास्त्र पढ़ना शुरू किया और यह पाया कि एक ऐसा हथियार उनके हाथ लगा है जिसका इस्तेमाल वे क्रान्ति को जारी रखने में कर सकते हैं। जबकि पार्टी में मौजूद पूंजीवादी मार्गियों ने मज़दूरों को हतोत्साहित करने के लिए ऐसे अधिकारियों को फैक्टरियों में भेजा, जिन्होंने दर्शन पढ़ने के लिए उनका माखौल उड़ाया और यह आदेश दिया कि वे अपनी अध्ययन टोली भंग कर दें। परन्तु समय निकालकर मज़दूरों ने इसे जारी रखा और 1960 के मध्य में जब सांस्कृतिक क्रान्ति का ज्वार उमड़ पड़ा तो वे उसके साथ हो लिए। सांस्कृतिक क्रान्ति के इसी उभार ने उस समय पूंजीवादी पुनर्स्थापना के प्रयासों को शिकस्त दी।

सांस्कृतिक क्रान्ति ने एक ऐसे वेगवाही जनान्दोलन को जन्म दिया जिसमें हर चीज पर लोग बहस चला रहे थे, जूझते हुए रास्ता निकाल रहे थे और अपने संघर्षों को सही दिशा देने के लिए मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओवाद देने के लिए मार्क्सवाद-लेनिनवाद-माओवाद का अध्ययन कर रहे थे। माचियोचि बताती हैं कि जिस फैक्टरी में भी वे गईं, मज़दूरों द्वारा बनाये गये बड़े चित्राक्षरों वाले पोस्टर – डाजिबाओ (Dazibao) लगे हुए थे, जिसमें उन्होंने विश्व राजनीति से लेकर उत्पादन की समस्याओं का दर्शन के जरिए हल निकालने तक, हर चीज़ पर अपनी राय जाहिर की थी।

सांस्कृतिक क्रान्ति के दिनों में जनता के वर्ग-संघर्ष ने चीनी समाज के प्रत्येक क्षेत्र में भारी तब्दीलियां की। फैक्टरी में और तमाम दूसरी जगहों पर अधिकारियों और तकनीशियनों के एकल प्रबन्धन वाली व्यवस्था को उखाड़ फेंका गया और उसकी जगह मज़दूरों द्वारा चुनी गई क्रान्तिकारी कमेटियों की स्थापना की गई। इस चुनाव का एक ही आधार था – क्रान्ति के हितों की सेवा करना। ये कमेटियां चीनी फैक्टरी में काम करना अनिवार्य था ताकि मज़दूरों के साथ उनका सम्पर्क टूटने न पाये। इसके साथ ही वे मज़दूरों की देख-रेख में काम करते। मज़दूरों के स्वयं के निर्णयों के आधार पर कार्य सम्बन्धी नियमों में सुधार होता और संशोधित नियमों को फिर से लिख लिया जाता। इंजीनियरों, वैज्ञानिकों, तकनीशियनों और सर्वहारा के बीच की विभाजक रेखा को तोड़ने के लिए संघर्ष छेड़ा गया। इसके लिए एक योजना तैयार की गई और व्यापक रूप से उसे कार्यान्वित किया गया। इसके अन्तर्गत तकनीकी क्षेत्र से जुड़े लोगों के लिए यह अनिवार्य था कि वे मज़दूरों के बीच जाकर उनसे सीखें और उत्पादन की समस्याओं, वैज्ञानिक शोध सम्बन्धी प्रश्नों आदि का समाधान उनके साथ मिलकर करें। वैज्ञानिकों और तकनीशियनों ने सर्वहारा से प्रशिक्षण भी प्राप्त किया।

'न्यू चाइना' पत्रिका में, जिसे 1970 में यू. एस. – चाइना पीपुल्स फ्रेण्डशिप एसोसियेशन ने निकाला था, लिंडा नेल्सन का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित हुआ था। अमेरिका के पश्चिमी वर्जीनिया के कोयला खदान में काम करने वाले परिवार की लिंडा नेल्सन ने इस लेख में क्रान्तिकारी चीन और अमेरिका के कोयला मज़दूरों की तुलना करते हुए उनकी जीवन स्थितियों में जमीन-आसमान के अन्तर को स्पष्ट किया है। उन्होंने उत्तरपूर्वी चीन के कोयला खदानों की यात्राएं कीं और यह पाया कि इन खानों में स्वास्थ्य और सुरक्षा एहतियात सम्बन्धी और सुरक्षा एहतियात सम्बन्धी मामलों पर चीनी लोग बेहद ध्यान देते हैं। वे खदानों में ऐसी मशीनें लगाते जो कोयला की गर्द को नीचे बनाये रखती जिससे कोयला कणों से होने वाले फेफड़े के रोगों की संभावनाएं काफी कम हो जातीं। चीन में प्रत्येक कोयला खान के पास अपना चिकित्सालय था, जिससे किसी किस्म की दुर्घटना अथवा स्वास्थ्य समस्याओं के साथ तुरन्त निपटा जा सकता था। इसकी तुलना लेखिका ने उस स्थिति से की है जब काले फेफड़े के रोग से पीड़ित उनके पिता को एक छोटे-मोटे दवाखाने तक पहुंचने के लिए 10-15 मील दूर जाना पड़ता और अस्पताल के लिए एक घण्टे का सफर तय करना पड़ता था। वे बताती हैं कि किस प्रकार अमेरिका में ज़िन्दा रहने के लिए उनके परिवार को कमरतोड़ ओवरटाइम करना पड़ता, जबकि समाजवादी चीन में मज़दूर सिर्फ काम

(पेज 8 पर जारी)

## आपस की बात

### यूनियनों का क्रान्तिकारीकरण ज़रूरी है

मैं एक बीमाकर्मी हूं और अपनी यूनियन से निष्ठापूर्वक जुड़ा हुआ हूं। मेरी यूनियन अन्य यूनियनों से भिन्न तरीके से संघर्ष का कार्यक्रम देती रही है। अन्य यूनियनों से मोर्चा बनाने की, दूसरे संस्थानों की लड़ाई में साझीदार बनने की बात करती रही है। अभी-अभी बाल्को आंदोलन में 'आल इण्डिया' ने सहयोग भी दिया। लेकिन एक बात जो बार-बार खटकती रही है, उसकी चर्चा मैं कर रहा हूं।

अभी 25 जुलाई को देश के सभी ट्रेड यूनियन महासंघों ने केन्द्र व राज्य के सभी सरकारी कर्मचारियों की हड़ताल का आह्वान किया था। 'बीमा मज़दूर' में भी यह आह्वान छपा था। हम लोग मानकर चल रहे थे कि बीमाकर्मी भी इस हड़ताल में शिरकत करेंगे। अन्तिम समय तक ऊहापोह की स्थिति बनी हुई थी। अन्त में पता चला कि हड़ताल को बीमाकर्मी महज नैतिक समर्थन देंगे। आखिर क्यों?

मेरी यूनियन बीमा सेक्टर की मुख्य यूनियन है जो सी.पी.एम. से जुड़े सीटू से सम्बद्ध है। सीटू की सरकारी व सार्वजनिक क्षेत्र के लगभग सभी इकाइयों में यूनियनें हैं। सभी जगह निजीकरण हो रहा है और सभी जगह लोग अलग-अलग तरीके से लड़ रहे हैं। क्या सीटू को सबके साझा संघर्ष का कार्यक्रम नहीं बनाना चाहिए था? क्या बीमा के निजीकरण के खिलाफ जो आन्दोलन चल रहा था उसके समर्थन में अन्य यूनियनों को नहीं जोड़ा जाना चाहिए था? क्या ए. आई.आई.ई.ए. (बीमा यूनियन) ने महज दिखावटी विरोध प्रदर्शन नहीं किए? एक तरफ तो बाल्को में समर्थन-सहयोग देना और दूसरी तरफ 25 के देशव्यापी हड़ताल में महज मौन समर्थन, नेतृत्व पर सन्देह नहीं पैदा कर रहा है? क्या हड़तालों-प्रदर्शनों के बावजूद हमारे आन्दोलन की धार कुन्द नहीं हो रही है? क्या यूनियन नेतृत्व ने हमारी बाबूगिरी की मानसिकता को बढ़ावा नहीं दिया है?

वैसे यूनियन नेतृत्व ने संघर्ष का नक्शा तो खींचा है, लेकिन परिवर्तन की दिशा स्पष्ट नहीं है। निजीकरण का विरोध केवल बीमा के निजीकरण का सवाल नहीं है, यह तो, उदारीकरण के खिलाफ संघर्ष है, यह तो पूरे पूंजीवादी निजाम के खिलाफ चलने वाले संघर्षों का हिस्सा है। महज कुछ हड़तालें, कुछ प्रदर्शन, कुछ हस्ताक्षर अभियानों से क्या होने वाला था? आन्दोलन की कोई क्रमबद्धता भी नहीं थी। यही कारण है कि हमारी लड़ाइयां महज कुछ खानापूर्ति बनकर रह गयीं।

आज के इस दौर में, इन प्रश्नों पर विचार करना और सही लड़ाई से नाता जोड़ना ज़रूरी है, यूनियनों का क्रान्तिकारीकरण ज़रूरी है।

–मनोज कुमार राय
भारतीय जीवन बीमा निगम, पटना

विशेष सामग्री

( सातवीं किश्त )

अध्याय - 4

# पार्टी की बुनियादी समझदारी

## पार्टी का बुनियादी कार्यक्रम और अन्तिम लक्ष्य

एक क्रांतिकारी पार्टी के बिना मजदूर वर्ग क्रांति को कतई अंजाम नहीं दे सकता। लेनिन ने इस बात को बार-बार जोर देकर कहा था। स्तालिन और माओ ने भी बराबर इस बात पर जोर दिया और बीसवीं सदी की सभी सफल सर्वहारा क्रान्तियों ने भी इसे सत्यापित किया।

लेनिन ने सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी के सांगठनिक उसूलों का निर्धारण किया और इसी फौलादी सांचे में वोल्शेविक पार्टी को ढाला। चीन की पार्टी भी बोल्शेविक पार्टी की ही उत्तराधिकारी थी। सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान, समाजवादी समाज में वर्ग-संघर्ष का संचालन करते हुए माओ के नेतृत्व में चीन की पार्टी ने अन्य युगान्तरकारी सैद्धान्तिक उपलब्धियों के साथ-साथ लेनिनवादी सांगठनिक सिद्धान्तों को भी और आगे विकसित किया।

सोवियत संघ और चीन में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना के लिए बुर्जुआ तत्वों ने सबसे पहले यही जरूरी समझा कि सर्वहारा वर्ग की पार्टी का चरित्र बदल दिया जाये। हमारे देश में भी संसदीय रास्ते की अनुगामी नामधारी कम्युनिस्ट पार्टियों मौजूद हैं। भारतीय मजदूर क्रांति को सफल बनाने के लिए भारत में भी सर्वहारा वर्ग की एक सच्ची क्रान्तिकारी पार्टी खड़ी करने का काम सर्वोपरि है।

इसके लिए बेहद जरूरी है कि मजदूर वर्ग यह जाने कि असली और नकली कम्युनिस्ट पार्टी में क्या फर्क होता है और एक क्रान्तिकारी पार्टी कैसे खड़ी की जानी चाहिए।

इसी उद्देश्य से, फरवरी, 2001 अंक से हमने एक बेहद जरूरी किताब 'पार्टी की बुनियादी समझदारी' के अध्यायों का किश्तों में प्रकाशन शुरू किया है। इस अंक में सातवीं किश्त दी जा रही है। यह किताब सांस्कृतिक क्रान्ति के दौरान पार्टी-कतारों और युवा पीढ़ी को शिक्षित करने के लिए तैयार की गयी श्रृंखला की एक कड़ी थी। चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की दसवीं कांग्रेस ( 1973 ) में पार्टी के गतिशील क्रान्तिकारी चरित्र को बनाये रखने के प्रश्न पर अहम सैद्धान्तिक. चर्चा हुई थी, पार्टी का नया संविधान पारित किया गया था और संविधान पर एक महत्वपूर्ण रिपोर्ट प्रस्तुत की गयी थी। इसी नई रोशनी में यह पुस्तक एक सम्पादकमण्डल द्वारा तैयार की गयी थी। मार्च, 1974 में पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, शंघाई से इस पुस्तक के प्रथम संस्करण की 4,74,000 प्रतियां छपीं। यह पुस्तक पहले चीनी भाषा से फ्रांसीसी भाषा में अनूदित हुई और 1976 में प्रकाशित हुई। फिर नार्मन बेथ्यून इंस्टीच्यूट, टोरण्टो ( कनाडा ) ने इसका फ्रांसीसी से अंग्रेजी में अनवाद कराया और 1976 में ही इसे प्रकाशित भी कर दिया। प्रस्तत हिन्दी अनवाद मल पुस्तक के इसी अंग्रेजी संस्करण से किया गया है।

\- सम्पादक

### पार्टी की बुनियादी दिशा

दसवीं कांग्रेस के दौरान स्वीकृत किए गए पार्टी संविधान ने एक बार फिर समाजवाद के सम्पूर्ण ऐतिहासिक कालखण्ड के लिए पार्टी की बुनियादी दिशा का पुन: पुष्टीकरण किया। सभी पार्टी सदस्यों को सचेतन तौर पर इस बुनियादी दिशा का अध्ययन करना चाहिए, इसे गहराई से समझना चाहिए और अपनी चेतना का स्तर ऊपर उठाना चाहिए ताकि वे इसे लागू कर सकें।

बुनियादी दिशा पार्टी की प्राण-शक्ति है।

अध्यक्ष माओ हमें सिखाते हैं: "सैद्धान्तिक और राजनीतिक दिशा सही है या गलत इससे हर चीज तय होती है" (चीन की कम्युनिस्ट पार्टी की दसवीं कांग्रेस (दस्तावेज) से उद्धृत माओ त्से-तुङ) और यह कि "क्रांति को विजय तक ले जाने के लिए किसी राजनीतिक पार्टी को अपनी राजनीतिक दिशा के सहीपन और अपने संगठन की मजबूती पर निर्भर होना चाहिए।" *(माओ त्से-तुङ, संकलित रचनाएं, खण्ड-1, "अन्तरविरोध के बारे में", पेज-315)।* यह हमें साफ तौर पर दिखला देता है कि अगर एक सर्वहारा राजनीतिक पार्टी क्रांतिकारी उद्देश्य को जीत तक ले जाना चाहती है तो उसे अनिवार्यत: एक मार्क्सवादी-लेनिनवादी दिशा को अपनाना चाहिए। अगर किसी पार्टी की लाइन सही है, तो उसके पास सिपाही न भी हों, तो सिपाही हो जाएंगे; उसके पास सत्ता नहीं भी है तो वह सत्ता हासिल कर लेगी। लेकिन अगर किसी पार्टी की लाइन गलत है, तो भले ही उसका नियंत्रण राष्ट्रीय और स्थानीय सरकार पर और सेना पर हो, एक दिन उसका पतन हो जाएगा। यह एक ऐसा सत्य है जिसे हमारी पार्टी के और अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आंदोलन के ऐतिहासिक अनुभवों ने बार-बार पुष्ट किया है।

अध्यक्ष माओ ने समाजवाद के सम्पूर्ण कालखण्ड के लिए बुनियादी दिशा का कुछ यों सूत्रीकरण किया है: "समाजवादी समाज अच्छे-खासे लम्बे ऐतिहासिक काल में फैला होता है। समाजवाद के ऐतिहासिक कालखण्ड में, अभी वर्ग, वर्ग-अन्तरविरोध और वर्ग-संघर्ष मौजूद होते हैं, समाजवादी रास्ते और पूंजीवादी रास्ते के बीच संघर्ष मौजूद होता है, और पूंजीवादी पुनर्स्थापना का खतरा मौजूद रहता है। हमें इस संघर्ष की दीर्घकालिक और जटिल प्रकृति को समझना चाहिए। हमें अपनी चौकसी को मजबूत बनाना चाहिए। हमें समाजवादी शिक्षा का संचालन जरूर करना चाहिए। हमें वर्ग अन्तरविरोधों और वर्ग-संघर्ष को सही ढंग से समझना चाहिए और उसका प्रबंधन करना, अपने और दुश्मन के बीच के अन्तरविरोधों और जनता के बीच के अन्तरविरोधों में फर्क करना चाहिए और उनका सहीं ढंग से समाधान करना चाहिए। नहीं तो हमारे देश जैसा एक समाजवादी देश अपने विपरीत में बदल जाएगा और पतित हो जाएगा, और पूंजीवादी पुनर्स्थापना हो जाएगी। अब से हमें स्वयं को हर साल, हर महीने, हर दिन इस बात की याद दिलानी चाहिए ताकि हम इस समस्या की एक अपेक्षाकृत गंभीर समझ कायम रख सकें और एक मार्क्सवादी-लेनिनवादी दिशा हासिल कर सकें।" *(माओ त्से तुङ पीकिङ रिव्यू, नं.-43, 26 अक्टूबर, 1973, पेज-5)* पार्टी की यह बुनियादी दिशा मार्क्सवाद-लेनिनवाद पर आधारित है; यह हमारी पार्टी की प्राणशक्ति है, वह मशाल है जो हमारे सारे कामों को प्रदीप्त करती है, यह समाजवादी क्रांति और निर्माण की विजय की बुनियादी गारण्टी है। अगर हम किसी भी काम में इस दिशा से भटकते हैं, तो हमसे हमेशा दक्षिणपंथी और "वामपंथी" गलतियां होने का खतरा रहेगा। इस दिशा को मानते हुए हमारे देश की अलग-अलग राष्ट्रीयताओं को एक करना और सभी सकारात्मक कारकों को लामबन्द करना सम्भव होगा। इस कार्यदिशा को मानते हुए हम अपने देश में सर्वहारा के अधिनायकत्व को लगातार मजबूत कर सकते हैं और समाजवादी क्रांति और निर्माण में और महान जीतें हासिल कर सकते हैं।

अध्यक्ष माओ द्वारा सूत्रीकृत बुनियादी कार्यदिशा पूंजीवाद से साम्यवाद तक के संक्रमण के दौरान वर्ग-संघर्ष से सम्बन्धित मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सिद्धान्त को समृद्ध और विकसित करती है। यह समाजवादी समाज में वर्ग-संघर्ष को नियंत्रित करने वाले वस्तुगत नियमों पर प्रकाश डालती है, और सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक दोनों ही तौर पर सर्वहारा के अधिनायकत्व के सशक्तीकरण और पूंजीवादी पुनर्स्थापना को रोकने की समस्याओं का समाधान करती है।

पार्टी की बुनियादी कार्यदिशा समाजवादी समाज में वर्ग व अन्तर्विरोध और वर्ग-संघर्ष को सही ढंग से प्रतिबिम्बित करती है, और साफ तौर पर यह दिखलाती है कि समाज के प्रधान अन्तर्विरोध दो वर्गों – बुर्जुआ वर्ग और सर्वहारा वर्ग के बीच दो मार्गों के बीच समाजवादी मार्ग और पूंजीवादी मार्ग के बीच होता है। यह सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व को दृढ़ करने और मजबूत बनाने के महत्व को रेखांकित करती है। यह पार्टी को चेताती है कि वर्ग - संघर्ष की दीर्घकालिक और जटिल प्रकृति पर इसकी दृढ़ पकड़ होनी चाहिये और उसे कभी अपनी चौकसी को ढीला नहीं करना चाहिये।

पार्टी की बुनियादी कार्यदिशा सर्वहारा के अधिनायकत्व के अन्तर्गत क्रान्ति को जारी रखने में पार्टी के रणनीतिक लक्ष्य और सामान्य उद्देश्य यानी, बुर्जुआ वर्ग और अन्य सभी प्रकार के शोषण को पूर्णतया उखाड़ फेंकने, पूंजीवाद को समाजवाद द्वारा प्रस्थापित करने, शोषण के खात्मे और कम्युनिज़्म तक के संक्रमण के लिए स्थितियां तैयार करती है।

पार्टी की बुनियादी कार्यदिशा इस सामान्य सिद्धान्त को अभिव्यक्त करती है, कि दो तरह के अंतरविरोधों के बीच भेद करना और उन्हें सही ढंग से हल करना जरूरी है। यह दो तरह के अंतरविरोध हैं – हमारे और शत्रु के बीच का अंतरविरोध और जनता के बीच के अंतरविरोध यही सिद्धान्त वह बुनियाद और नियम बनाता है जिसका पार्टी अपनी ठोस नीति के निर्धारण में इस्तेमाल करती है। यह सिद्धान्त वह सामान्य दिशा भी प्रदान करता है जो इस ठोस नीति के सही प्रयोग का मार्गदर्शन करती है। अगर हम इन दोनों अंतरविरोधों के बारे में भ्रमित होते हैं तो हम अपने काम में एक गंभीर भूल करेंगे। अगर हम जनता की कतारों के बीच के अंतरविरोध को वह अंतरविरोध समझेंगे जो दरअसल अपने और दुश्मन के बीच का अंतरविरोध है यानी अगर हम दुश्मन और दोस्त को गड्डमड्ड कर देंगे और उनके बीच भेद नहीं करेंगे तो हम दक्षिणपंथी गलतियां करेंगे। और यदि इसके उल्टे हम अपने और शत्रु के बीच के अंतरविरोध को वह अंतरविरोध समझेंगे जो दरअसल जनता की कतारों के बीच का अंतरविरोध है, अगर हम अपने प्रहारों को बहुत ज्यादा लोगों की तरफ लक्षित करेंगे तो हम "वामपंथी" गलतियां कर बैठेंगे। दोनों ही सूरत में नतीजा होगा पार्टी की बुनियादी कार्यदिशा से अलगाव।

हमें हमेशा साफ दिमाग रखते हुए और वर्ग-संघर्ष और सर्वहारा के अधिनायकत्व के सशक्तीकरण को कभी न भूलते हुए, "हर साल, हर महीने और हर दिन स्वयं को" पार्टी की बुनियादी कार्यदिशा की "याद दिलानी चाहिए।"

सही कार्यदिशा हमेशा गलत कार्यदिशा से तुलनाओं से होकर ही अस्तित्वमान रहती है, और उसके विरुद्ध संघर्ष में ही वह विकसित होती है। इस तरह, अवसरवादी कार्यदिशा – विशेषत: ल्यू शयाओ-ची और लिन प्याओ की संशोधनवादी कार्यदिशा के विरुद्ध संघर्ष के दौरान पार्टी की बुनियादी कार्यदिशा विकसित हो सकी है।

मार्च, 1949 में, जब चीनी क्रांति नव जनवादी क्रांति से समाजवादी क्रांति की मंजिल में जाने वाली थी, सातवीं केन्द्रीय कमेटी के दूसरे प्लेनरी सेशन को प्रस्तुत अपनी रिपोर्ट में अध्यक्ष माओ ने बताया कि सर्वहारा वर्ग द्वारा राष्ट्रव्यापी सत्ता पर कब्जे के बाद प्रधान अंतरविरोध "मजदूर वर्ग और बुर्जुआ वर्ग के बीच का अंतरविरोध होगा।" नए चीन की स्थापना के बाद अध्यक्ष माओ ने फिर से उन राजनीतिक सिद्धान्तों की दिशा तय की जिन्हें हमें अवश्य अपनाना चाहिए। साथ ही उन्होंने कृषि, दस्तकारी और पूंजीवादी वाणिज्य तथा उद्योग के समाजवादी रूपांतरण की मंजिलें निर्धारित कीं और फलस्वरूप बुर्जुआ वर्ग के विरुद्ध आर्थिक, राजनीतिक और सैद्धान्तिक मोर्चों पर संघर्षों का एक सिलसिला शुरू किया और समाजवाद की राह पर जनता के विजयाभियानों का नेतृत्व किया। फिर भी ल्यू श्याओ-ची ने अध्यक्ष माओ की क्रांतिकारी कार्यदिशा का अपनी पूरी शक्ति के साथ विरोध किया। उसने खुले तौर पर इस बात का समर्थन किया कि "जितना अधिक शोषण होगा, उतनी ही चीजें बेहतर होंगी।" उसने "नव जनवादी व्यवस्था के सुदृढ़ीकरण" का प्रतिक्रियावादी नारा दिया और देश में हर मोर्चे पर समाजवादी क्रांति का सूत्रपात करने के लिए स्थितियों को तैयार करने का विरोध किया। वह चाहता यह था कि पूंजीवादी शक्तियों के अस्तित्व को लम्बे समय तक मौज़ूद रहने दिया और उन्हें विकसित किया जाए।

1956 में जब हमारे देश में उत्पादन के साधनों के अधिकांश भाग में समाजवादी रूपांतरण के लक्ष्य की प्राप्ति हो चुकी थी, क्या तब भी वर्ग, वर्ग-संघर्ष ओर वर्ग-अंतरविरोध अस्तित्वमान थे? क्या तब भी सर्वहारा वर्ग और बुर्जुआ वर्ग के बीच का अंतरविरोध हमारे देश में प्रधान अंतरविरोध था? ये प्रश्न दो लाइनों के बीच संघर्ष में केंद्रीय बिन्दु बन गए। इसी समय ल्यू श्याओ-ची ने "वर्ग-संघर्ष का विलोपीकरण" और "उत्पादक शक्तियों की प्राथमिकता का सिद्धान्त" जैसी भ्रांतियां फैलाईं। उसने दावा किया कि यह प्रश्न कि, हमारे समाज में समाजवाद विजयी होगा या पूंजीवाद, "पहले ही तय हो चुका है।" चेन पो-ता के साथ मिलकर ल्यू श्यंाओ-ची ने यह विचार प्रचारित किया कि हमारे लिए सर्वहारा वर्ग और बुर्जआ वर्ग के बीच का अंतरविरोध अब प्रधान अंतरविरोध नहीं रह गया है, बल्कि "उन्नत समाजवादी व्यवस्था और पिछड़ी उत्पादक शक्तियों के बीच का अन्तरविरोध" प्रधान अंतरविरोध हो गया है। अध्यक्ष माओ से छिपाकर इन गद्दारों ने आठवीं कांग्रेस द्वारा पास प्रस्ताव में इन विचारों को धोखे से शामिल कर दिया। अध्यक्ष माओ को इन समस्याओं का तुरन्त पता चल गया और उन्होंने इन गलतियों की कड़ी आलोचना की। 1957 के प्रारम्भ में अध्यक्ष माओ ने अपनी महान रचनाओं में से एक जनता के बीच अंतरविरोधों को सही ढंग से हल करने के बारे में प्रकाशित किया जिसमें वे साफ तौर पर समझाते हैं कि उत्पादन के साधनों के समाजवादी रूपान्तरण के मुख्यत: पूरा हो जाने के बाद भी वर्ग, वर्ग-अंतरविरोध और वर्ग-संघर्ष अस्तित्वमान होते हैं और यह प्रश्न (पेज 6 पर जारी)

### उत्तर प्रदेश में उद्योगबंदी व छंटनी का क़ानूनी रास्ता साफ

# चोर दरवाजे से मज़दूरों पर हमले जारी

बिगुल संवाददाता

लखनऊ, 22 जुलाई। पूंजीपतियों और साम्राज्यवादियों के हित के अनुरूप पूरे श्रम कानूनों में बदलाव का मौका ढूंढ रहे भाजपाई सत्ताधारियों ने चोर दरवाजे से मज़दूर विरोधी क़ानूनों को बनाने और लागू करने की प्रक्रिया तेज कर दी है। इस साल का बजट पेश करते हुए वित्तमंत्री यशवन्त सिन्हा ने एक नयी परम्परा की शुरुआत करते हुए **औद्योगिक विवाद अधिनियम के अध्याय 5 (बी) और ठेका मज़दूर अधिनियम** में बदलाव की शुरुआत करके श्रम क़ानूनों में बदलाव करने की नीतिगत घोषणा कर दी थी। उसी परम्परा को आगे बढ़ाने का काम अब तमाम राज्य सरकारें भी करने लगी हैं। इसी क्रम में उत्तर प्रदेश सरकार ने कम्पनियों को अपना कारोबार पुनर्गठित करने के लिए कर्मचारियों की छंटनी व उद्योग बन्द करने की अनुमति देने का फैसला लिया है।

उत्तर प्रदेश की प्रधान श्रम सचिव मंजुलिका गौतम ने पी.एच.डी. वाणिज्य मण्डल (पूंजीपतियों की एक संस्था) की एक बैठक को संबोधित करते हुए घोषित किया कि सरकार ने वास्तविक रूप से बीमार या खस्ताहाल उद्योगों के पुनर्गठन के लिये मज़दूरों-कर्मचारियों की छंटनी या उद्योगों को बन्द करने की अनुमति देने का निर्णय लिया है। इसी के साथ सरकार ने इंजीनियरिंग उद्योग में करार (यानी अनुबन्ध) के आधार पर नौकरी देने की भी अनुमति दे दी है।

आज यह कोई छुपी हुई बात नहीं है कि सरकार कैसे तमाम उद्योगों को बीमार घोषित करती रही है अथवा खस्ताहाल स्थिति में पहुंचाती रही है। तमाम उदाहरण सामने हैं। समझने के लिये एक-दो उदाहरण पर्याप्त हैं – कानपुर स्थित सार्वजनिक क्षेत्र के जूता बनाने वाले कारखाने टैफ्को (फ्लैक्स शू कं.) के अस्सी प्रतिशत जूते सेना या पुलिस विभाग को बेचे जाते थे। आम जनता के लिए इसकी मार्केटिंग कमजोर थी।

1993-94 में अचानक सरकार ने फोर्स आदि के लिये सरकारी खरीद बन्द कर दी। इसकी बिक्री का कोई वैकल्पिक ताना-बाना भी विकसित नहीं किया गया। फलत: एक-दो वर्ष के भीतर मुनाफे वाला यह कारखाना भारी घाटे में चला गया और आज यह बिकने के कगार पर है। इसी प्रकार रानीबाग (नैनीताल) स्थित सार्वजनिक क्षेत्र के घड़ी निर्माता एच.एम.टी. कारखाने के साथ भी पैदा की गयी और आज यह कारखाना भी बीमार है और यहां वी.आर.एस. के तहत छंटनी जारी है। ऐसे ही देश भर के परम्परागत कपड़ा उद्योगों के साथ हुआ। यहां पर कच्चे माल (सूती धागों) की कीमतें बढ़ा दी गयीं, इसकी उपलब्धता कम कर दी गयी और इसके समानान्तर पालिएस्टर धागों का आयात बढ़ गया। आज पूरे देश की ये कपड़ा मिलें या तो बन्द हो चुकी हैं अथवा बीमार घोषित है। आज देश में 6 लाख से ज्यादा कारखाने बीमार हैं अथवा बन्द पड़े हैं।

उत्तर प्रदेश में चोर दरवाजे से श्रम क़ानूनों में परिवर्तन ऐसे समय में हो रहा है जब तीन महीने में पूर्व श्रम मंत्री रवीन्द्र वर्मा की अध्यक्षता में गठित श्रम आयोग की रिपोर्ट आने वाली है और मालिकों के अनुरूप पूरे श्रम क़ानूनों में बदलाव का दस्तावेज आने वाला है।

दरअसल, देश के बड़े पूंजीपतियों के चैम्बर और साम्राज्यवादी वित्तीय पूंजी के नुमाइन्दे सरकार पर जल्द से जल्द "श्रम बाज़ार को लचीला" (यानी छंटनी, ले आफ, तालाबन्दी व उद्योग स्थानान्तरण की खुली छूट) बनाने के लिए दबाव बनाये हुए हैं। इसमें भी देशी इजारेदार पूंजीपति इसके लिए ज्यादा बेचैन हैं क्योंकि वे यह अच्छी तरह जानते हैं कि घरेलू व विश्व बाज़ार की वर्तमान प्रतिस्पर्द्धा में वे अपनी पूंजी और तकनोलाजी के दम पर नहीं टिक सकते। इनकी सबसे अधिक निर्भरता सस्ते श्रम पर ही है। इसलिए पुराने श्रम क़ानून – जो तमाम सीमाओं के बावजूद एक हद तक रोजगार सुरक्षा प्रदान करते रहे हैं – देशी पूंजीपतियोंके लिए एक-एक दिन भारी पड़ रहे हैं। श्रम क़ानूनों में इस बदलाव के खिलाफ मज़दूरों-कर्मचारियों के लगातार विरोध और किसी जनान्दोलन की आशंका से ग्रसित सरकार पूरे तौर पर श्रम क़ानूनों में बदलाव से हिचकिचा रही है और किसी उचित मौके की तलाश में है। इसी कारण से उसने फिलहाल किश्तों में परिवर्तन का रास्ता अपनाया है।

समूचे श्रम क़ानूनों में बदलाव और इससे मज़दूरों-कर्मचारियों पर पड़ने वाले घातक परिणामों पर 'बिगुल' में लगभग ढाई वर्षों से लेख और टिप्पणियां प्रकाशित होती रही हैं। पहले भी बताया जा चुका है कि लम्बे संघर्षों द्वारा अर्जित सीमित रोजगार सुरक्षा एवं अन्य सुविधाएं छीन ली जाएंगी। अकेले औद्योगिक विवाद अधिनियम के अध्याय 5 (बी) में संशोधन का प्रस्ताव ही यह संकेत दे रहा है।

इस वर्ष के केन्द्रीय बजट के माध्यम से श्रम क़ानूनों में बदलाव की उस घोषणा पर – जिसके तहत 1000 से कम संख्या वाले उपक्रमों में (वर्तमान में यह 100 से कम श्रमिकों वाले कारखाने में लागू है) काम करने वाले मज़दूरों की छंटनी, तालाबन्दी आदि के लिए कारखाना प्रबन्धकों को सरकारी अनुमति लेने की औपचारिकता भी खत्म हो जायेगी – पर एक बार फिर गौर करें।

मौजूदा समय में कारखाना अधिनियम के तहत पूरे देश में कुल 1,34,556 कारखाने पंजीकृत हैं जिनमें 97 लाख 7 हजार स्थायीकर्मी हैं (इससे दो गुने से भी ज्यादा कैजुअल ठेका मज़दूर हैं जिनके लिये रोजगार सुरक्षा का कोई खास अर्थ पहले भी नहीं रहा है)।

इन मज़दूरों के लिए रोजगार सुरक्षा की अब कोई गारण्टी नहीं रह जायेगी। यानी इस बदलाव से कागजों पर ही सही, मज़दूरों को प्राप्त अधिकार भी छिन जायेंगे।

यह तो पंजीकृत कारखानों की स्थिति है। पर कौन नहीं जानता कि इससे भी अधिक तादाद उन कारखानों की है, जिनके मालिकान कारखाना अधिनियम के तहत पंजीकरण नहीं करवाते। अवैध ढंग से चलने वाले कारखानों में रोजगार सुरक्षा की पहले भी कोई गारण्टी नहीं रही है। वैसे भी मौजूदा क़ानूनों के तहत अब तक प्राप्त क़ानूनी अधिकार भी मज़दूरों को उसी हद तक मिल पाते रहे हैं, जिस हद तक उनमें संघर्ष क्षमता होती है।

इसी तरह मौजूदा ठेका मज़दूर क़ानून को भी बदलकर ठेकेदारों के पंजीकरण से लेकर स्थायीकरण तक के क़ानूनी पचड़ों (वैसे पहले से ही 'ब्रेक' आदि का रास्ता मालिक वर्ग निकाल चुका था) से भी पूंजीपति पूरी तरह से छुटकारा पाना चाहते हैं। वे अमेरिकी शैली 'हायर एण्ड फायर' (जब चाहो काम पर रखो, जब चाहो निकाल बाहर करो) का अधिकार चाहते हैं। इसी के साथ वे 'ट्रेड यूनियन ऐक्ट 1926' में भी संशोधन करके मज़दूर यूनियनें गठित करने की प्रक्रिया को और ज्यादा कठिन और इसके अधिकारों को और ज्यादा छीन लेना चाहते हैं। सरकार इस बात का मुकम्मल इन्तजाम करना चाहती है, जिससे मज़दूर वर्ग के भीतर क्रान्तिकारी विचारधारा का रास्ता और ज्यादा संकरा हो जाये। वे मज़दूरों के हर प्रकार के संघर्ष का रास्ता बन्द कर देना चाहते हैं।

उत्तर प्रदेश सरकार की मौजूदा घोषणा इसी परिवर्तन की एक कड़ी है। अब कारखानेदार अपना कारोबार पुनर्गठित करने के नाम पर जब चाहेंगे तालाबन्दी अथवा छंटनी कर लेंगे, मज़दूरों को जब चाहे धक्के मारकर बाहर कर देंगे।

सरकार लुटेरे मालिकों को चाहे जितने भी अधिकार दे दे, वह मज़दूरों के संघर्ष को रोक नहीं सकती। मज़दूरों ने अब तक जो भी अधिकार प्राप्त किये थे वे क़ानूनी प्रक्रियाओं के नहीं संघर्षों के परिणाम थे। आगे भी अपने जुझारू संघर्ष के दम पर वे इसे हासिल करके रहेंगे।

---

### हिल्टन रबड़ फैक्टरी सोनीपत में अवैध तालाबन्दी

# सिर्फ क़ानूनी लड़ाई के भरोसे रहना ठीक नहीं

## व्यापक मज़दूर एकता क़ायम करने की कोशिश करो

(बिगुल संवाददाता)

सोनीपत। स्थानीय जी.टी. रोड पर बढ़खालसा के नज़दीक स्थित हिल्टन रबड़ फैक्टरी के प्रबन्धकों ने मज़दूरों-कर्मचारियों को लम्बे समय से वेतन नहीं देने के बाद विगत 19 जुलाई को फैक्टरी में ताला ठोंक दिया। इस गैरक़ानूनी तालाबन्दी के खिलाफ मज़दूरों ने बी.आई.एफ.आर. (औद्योगिक एवं वित्तीय पुनर्निर्माण बोर्ड) में मुकदमा दायर कर दिया है।

तालाबन्दी के बाद मज़दूरों से सम्पर्क करने गये 'बिगुल' संवाददाता को आक्रोशित मज़दूरों ने बताया कि हिल्टन के मालिकान लम्बे समय से इस फैक्टरी को बन्द करने के लिए बहाना ढूंढ रहे थे। तालाबन्दी से कुछ अर्सा पहले मालिकान ने आपसी झगड़े का बहाना दिखाकर फैक्टरी को बीमार घोषित करने के बाद बी.आई.एफ.आर. के हवाले कर दिया था, जिसकी सुनवाई अभी जारी ही थी कि अचानक तालाबन्दी कर दी गयी। इस तालाबन्दी के पीछे मालिकान की मंशा मज़दूरों-कर्मचारियों के वेतन-बोनस सहित सरकारी कर्जे आदि तमाम देनदारियों को हड़पकर फैक्टरी की परिसम्पत्तियों को दूसरी जगह निवेश के लिए स्थानान्तरित करना ही है। अपनी इस मंशा को कामयाब बनाने के लिए मालिकान लम्बे समय से प्रयासरत थे। कुछ अर्सा पहले अपनी दो अन्य कम्पनियों – 'फोरेक' और 'रोलैण्ड' को किसी दूसरे व्यक्ति को बेच देने का फर्जी सौदा दिखाकर उनके नाम लिए गये कर्जे भी 'हिल्टन' पर दिखाकर अन्तत: इसे बीमार घोषित कर दिया गया। इसके पहले भी मार्च 2000 में भी हिल्टन में 15 दिन की तालाबन्दी हो चुकी थी।

इस बार तालाबन्दी की खबर मिलते ही हिल्टन में कार्यरत लगभग छह सौ मज़दूरों ने फैक्टरी को चारों तरफ से घेर लिया। बाद में मज़दूरों ने ताला खोलकर फैक्टरी को अपने कब्जे में ले लिया। और जिस भाग में मशीनें हैं उसे अपने कब्जे में ले लिया। तालाबन्दी के बाद फैक्टरी पहुंचे जिला श्रम अधिकारी (डी.एल.ओ.) ने मौका मुआयना के बाद सरकार को भेजी अपनी रिपोर्ट में फैक्टरी की तालाबन्दी को गैरक़ानूनी बताया है।

डी.एल.ओ. की यह रिपोर्ट मज़दूरों के प्रति पक्षधरता से कहीं ज्यादा इस बात से प्रेरित है कि कुछ समय पहले एक अन्य स्थानीय कारखाने 'गैडोर' में हुई तालाबन्दी को बी.आई.एफ.आर. गैर क़ानूनी घोषित कर चुका है। बी.आई. एफ.आर. ने बाद में 'गैडोर' का मामला दिल्ली हाईकोर्ट के सुपुर्द कर दिया।

रिपोर्ट लिखे जाने तक फैक्टरी की स्थिति यह थी कि मज़दूरों ने फैक्टरी की घेराबन्दी खत्म कर दी है और 'गैडोर' की तर्ज पर हिल्टन के मज़दूरों ने भी बी.आई.एफ.आर. में मुकदमा दायर कर दिया है। इस उम्मीद में कि 'गैडोर ' की तरह इस बार भी फैसला उनके पक्ष में होगा।

यह हो सकता है कि बी.आई. एफ.आर. इस बार भी तालाबन्दी को गैरक़ानूनी घोषित कर फैसला मज़दूरों के पक्ष में दे। इसलिए, इस क़ानूनी लड़ाई में उतरना एक अच्छा कदम है। लेकिन, मज़दूरों को इस सच्चाई को समझना होगा कि फैसले का अमल सिर्फ इस बात पर निर्भर करता है कि मज़दूरों में कितनी जुझारू एकजुटता कायम रहती है। अक्सर क़ानूनी लड़ाइयां जब लम्बे समय तक चलती हैं तो मज़दूरों की एकजुटता में कमजोरी पैदा होने लगती है। खुद 'गैडोर' के उदाहरण से ही इसे समझा जा सकता है। बी.आई.एफ.आर. के फैसले के बाद भी 'गैडोर' कारखाना अभी चालू नहीं हो सका है। इतना ही नहीं, फैसले में मालिकान को दिये गये इस निर्देश तक का पालन अभी नहीं हुआ है कि तालाबन्दी की अवधि में हर माह अन्तिम राहत के रूप में 2000 रु. हर मज़दूर को दिया जाये। अब मामला दिल्ली हाईकोर्ट में अटका पड़ा है।

सोनीपत के ही एक अन्य कारखाने 'ओसराम' के उदाहरण से भी यह समझा जा सकता है कि क़ानूनी लड़ाइयां जब लम्बी खिंचने लगती हैं तो मज़दूरों की एकता और संघर्ष क्षमता को क़ायम रख पाना कितना कठिन होता है। ओसराम फैक्टरी के मज़दूर पिछले लगभग दो साल से अपने वाजिब हकों के लिए संघर्षरत हैं। संघर्ष के एक मुकाम के बाद जबसे उन्होंने मुख्यत: क़ानूनी लड़ाई पर अधिक निर्भरता क़ायम की है, तबसे उनकी एकता भी धीरे-धीरे कमजोर होती जा रही है। मैनेजमेंट ने भी ज्यादा निरंकुश और हमलावर तेवर अख्तियार करना शुरू कर दिया है। अदालती फैसले का इन्तजार करते-करते मज़दूर अब थकने लगे हैं और उनके अन्दर निराशा घर करने लगी है। संघर्ष के किसी नये कार्यक्रम के अभाव में लम्बे समय से कारखाना गेट के सामने चल रहा प्रतीकात्मक धरना अब मज़दूरों में कोई उत्साह का संचार नहीं कर पा रहा है।

इसलिए, इन अनुभवों को ध्यान में रखते हुए हिल्टन के मज़दूर साथियों को यह समझना होगा कि क़ानूनी लड़ाई संघर्ष का सिर्फ एक हथियार हो सकता है लेकिन सिर्फ इसके भरोसे बैठे रहना आखिरकार पराजय और निराशा को ही जन्म देगा। क़ानूनी लड़ाई के नाम पर क़ानूनवाद का ज़हर आज मज़दूर आन्दोलन को काफी गहराई तक नुकसान पहुंचा रहा है। यह मज़दूरों की संघर्ष क्षमता को घुन की तरह खा रहा है। इसलिए, इससे उबरते हुए हिल्टन के मज़दूरों को अपनी संघर्ष क्षमता और व्यापक मज़दूर एकता पर

(पेज 6 पर जारी)

## "चीनी मज़दूर" पत्रिका के बारे में

**–माओ त्से-तुङ**

(प्रस्तुत लेख मज़दूरों के महान शिक्षक का माओ त्से-तुङ के एक महत्वपूर्ण लेख – *"चीनी मज़दूर" पत्रिका का परिचय* ' से लिया गया है।

यह चीन से निकलने वाली एक मासिक पत्रिका थी जिसका प्रकाशन फरवरी 1940 में येनान में शुरू हुआ था। इसे चीनी कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय कमेटी के ट्रेड यूनियन कमीशन की तरफ से प्रकाशित किया जाता था। बिगुल के पाठकों के लिए हम इस महत्वपूर्ण लेख को प्रकाशित कर रहे हैं।

– सम्पादक

# "चीनी मज़दूर" पत्रिका का परिचय

7 फरवरी 1940

"चीनी मज़दूर" पत्रिका का प्रकाशन आवश्यक है। चीन के मज़दूर वर्ग ने अपनी खुद की राजनीतिक पार्टी – चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में, पिछले बीस वर्षों में वीरतापूर्ण संघर्ष चलाए हैं और वह जनता का सबसे अधिक जागृत हिस्सा तथा चीनी क्रान्ति का अगुवा बन गया है। साम्राज्यवाद और सामन्तवाद के खिलाफ किसानों तथा अन्य तमाम क्रान्तिकारी जनता को गोलबन्द करते हुए उसने एक नव-जनवादी चीन की स्थापना करने तथा जापानी साम्राज्यवाद को बाहर खदेड़ देने के लिए संघर्ष किया है और इस बारे में उसका एक विशिष्ट योगदान रहा है। लेकिन अभी चीनी क्रान्ति को विजय प्राप्त नहीं हुई है और खुद मज़दूर वर्ग को एकताबद्ध करने के लिए और किसानों तथा निम्न पूंजीपति वर्ग के अन्य तबकों, बुद्धिजीवियों और अन्य तमाम क्रांतिकारी जनता को एकताबद्ध करने के लिए अभी भारी प्रयत्न करने की आवश्यकता है।

यह एक जबरदस्त राजनीतिक तथा संगठनात्मक कार्य है। इस कार्य को पूरा करने की जिम्मेदारी चीनी कम्युनिस्ट पार्टी, प्रगतिशील मज़दूरों तथा समस्त मज़दूर वर्ग पर है। मज़दूर वर्ग और समूची जनता की अन्तिम मुक्ति केवल समाजवाद के अन्तर्गत ही प्राप्त की जा सकती है और यही वह अन्तिम लक्ष्य है जिसे प्राप्त करने के लिए चीनी मज़दूर वर्ग को संघर्ष करना चाहिए। लेकिन समाजवाद की मंजिल में प्रवेश करने से पहले साम्राज्यवाद-विरोधी तथा सामन्तवाद-विरोधी जनवादी क्रान्ति की मंजिल से गुजरना अनिवार्य है। इसलिए चीन के मज़दूर वर्ग का फौरी कार्य है खुद मज़दूर वर्ग को एकताबद्ध करना तथा जनता को एकताबद्ध करना, साम्राज्यवाद व सामन्तवाद का विरोध करना और एक नए चीन, एक नव-जनवादी चीन के लिए संघर्ष करना। ठीक इसी कार्य को नजर में रखते हुए "चीनी मज़दूर" पत्रिका का प्रकाशन किया जा रहा है।

"चीनी मज़दूर" पत्रिका सरल भाषा में मज़दूरों के सम्मुख अनेक प्रश्नों के क्यों और कैसे पर प्रकाश डालेगी, जापानी-आक्रमणविरोधी युद्ध में मज़दूर वर्ग के संघर्ष की वास्तविक स्थिति के बारे में बताएगी तथा प्राप्त अनुभवों का निचोड़ निकालेगी, और इस तरह यह अपने कार्य को पूरा करने के लिए प्रयत्न करेगी।

"चीनी मज़दूर" पत्रिका को चाहिए कि वह मज़दूरों को शिक्षा देने तथा उनके बीच पैदा होने वाले कार्यकर्ताओं को ट्रेनिंग देने के लिए एक स्कूल बन जाए; और पाठकगण उसके विद्यार्थी होंगे। शिक्षा द्वारा मज़दूरों के बीच से बहुत से ऐसे कार्यकर्ताओं को तैयार करना निहायत जरूरी है जो जानकार और सुयोग्य हों और जो महज खोखली शोहरत के चक्कर में न हों तथा ईमानदारी से काम करने के लिए तैयार हों। इस तरह के कार्यकर्ताओं की एक बड़ी संख्या के बिना मज़दूर वर्ग के लिए मुक्ति प्राप्त करना असम्भव हैं। मज़दूर वर्ग को चाहिए कि वह क्रान्तिकारी बुद्धिजीवियों द्वारा दी जाने वाली मदद का स्वागत करे और कभी भी उससे इनकार न करे। कारण यह है कि उनकी मदद के बिना न तो मज़दूर वर्ग खुद आगे बढ़ सकता है और न ही क्रान्ति सफल हो सकती है।

मैं आशा करता हूं कि इस पत्रिका का सम्पादन-कार्य भली-भांति किया जाएगा और यह पत्रिका बड़ी संख्या में सजीव रचनाओं को प्रकाशित करेगी तथा ऐसे निर्जीव व घिसे-पिटे लेखों से सावधानी के साथ बचेगी जो बिलकुल निकम्मे, नीरस और दुरूह होते हैं।

पत्रिका का प्रकाशन शुरू होने के बाद उसे संजीदगी के साथ और बखूबी चलाया जाना चाहिए। यह पत्रिका के कर्मचारी मंडल की और साथ ही पाठकों की जिम्मेदारी है। यह निहायत जरूरी है कि पाठक अपने सुझाव भेजते रहें तथा छोटे-छोटे पत्रों व लेखों द्वारा यह व्यक्त करते रहें कि उन्हें क्या पसन्द है और क्या नहीं।

इस पत्रिका को सफल बनाने का तरीका यही है। उपरोक्त शब्दों में मैंने अपनी आशाएं व्यक्त कर दी हैं; इन्हें "चीनी मज़दूर" पत्रिका के परिचय के तौर पर समझिए।

## समाजवाद बनाम पूंजीवाद

महंगाई, बेरोजगारी, अमीरी-ग़रीबी की बढ़ती खाई असमान विकास और मानव सृजनशीलता में गतिरोध - पूंजीवादी समाज की आम बीमारियां है। इसके ठीक विपरीत इन तमाम बीमारियों से मुक्त होकर मज़दूरों के राज्य समाजवाद के दौर में उन्नति व विकास के नये-नये कीर्तिमान स्थापित हुए थे। समाजवाद जहां-जहां अस्तित्व में रहा उसने बेरोजगारी का समूल नाश कर दिया। जनता के जीवन स्तर और समानता में लगातार हर मायने में बढ़ोत्तरी होती गयी।

मुनाफे की अंधी हवस के कारण पूंजीवाद बार-बार मंदी का शिकार होता है। अन्त में वह मंदी के भंवर जाल में ऐसा उलझ जाता है जिससे निकलने की हर कोशिश उसे और उलझाती जाती है। जैसा कि आज हो रहा है। इससे छुटकारा तो इस मुनाफाखोर व्यवस्था के खात्में के साथ ही संभव है। समाजवाद कभी मंदी या गतिरोध का शिकार नहीं होता।

1929 में, विश्व पूंजीवाद पहली बार एक बड़ी मंदी के दुश्चक्र में फंसा था। 1929-32 के इस दौर में पूंजीवादी देशों में उत्पादन में गिरावट से लेकर रोजगार में भारी कटौती हुई थी। यह वही दौर था जब यूरोप के सबसे पिछड़े देश रूस में मज़दूरों का राज्य कायम था और वहां उत्पादन में 8 गुने से लेकर 10 गुने तक वृद्धि हो रही थी। आइए, आंकड़ों पर एक नजर दौड़ाएं:

1929-32 के दौर में विकसित पूंजीवादी देशों – अमेरिका व यूरोपीय देशों में औद्योगिक उत्पादन लगातार गिरता जा रहा था। इन देशों में 1930 में औद्योगिक उत्पादन 14.6 प्रतिशत घटा था, 1931 में 13.9 और 1932 में 15.1 प्रतिशत और घटता गया। इस दौरान अमेरिका में कोयला उत्पादन 28 वर्ष पीछे चला गया, ढलवां लोहे का उत्पादन 36 वर्ष पीछे, इस्पात उत्पादन 31 वर्ष व कपास खपत 11 वर्ष पीछे चला गया।

1928 से 32 के बीच अमेरिकी मैनुफैक्चरिंग उद्योग में रोजगार 40 प्रतिशत तक घट गया था। औद्योगिक देशों में कुल बेरोजगारी, इस संकट से पहले के बेरोजगारी की तुलना में, घटकर 30-40 प्रतिशत रह गयी। इस संकटकालीन दौर में, पहले की तुलना में अमेरिका में वास्तविक तनख्वाह 25 प्रतिशत से अधिक घट गयी। इस दौर में अमेरिका में 1 करोड़ 15 लाख, जर्मनी में 56 लाख और ग्रेट ब्रिटेन में 23 लाख बेरोजगार थे।

अब मज़दूरों के राज्य सोवियत संघ में इसी दौर की उपलब्धियों को देखें। 1917 की क्रान्ति और फिर गृह युद्ध से उबरने के बाद 1921 में यहां निर्माण का कार्य शुरू हुआ। साम्राज्यवादी देशों द्वारा आर्थिक नाकेबन्दी और पूंजी की कमी के बावजूद सोवियत समाजवादी राज्य ने अपनी सबसे बड़ी ताकत मेहनतक़श जनता के श्रम की पूंजी पर भरोसा किया। उसने इस बात को साबित किया कि इतिहास का निर्माण पूंजी की ताकत से नहीं, आम जनता की ताकत से होता है।

जिस वक्त विश्व पूंजीवाद संकटग्रस्त था, सोवियत संघ में पहली पंचवर्षीय योजना (1928-32) लागू हो रही थी। योजना की प्राथमिकताएं मेहनतक़शों के हितों के मुताबिक तय की गयी थीं।

आम जनता के उत्साह और सहयोग से पंचवर्षीय योजना अपने निर्धारित समय से पहले 4 वर्ष व 3 महीने में ही पूरी हो गयी। औद्योगिक उत्पादन दो गुना हो गया। तकनीशियनों की भारी कमी के बावजूद ट्रैक्टर, आटोमोबाइल, वायुयान, रसायन, कृषियंत्र, मशीन टूल्स, इंजीनियरिंग और युद्ध सामग्री जैसे नये उद्योग एकदम धूल से खड़े किये गये। जीवन स्तर, विशेषकर भारी उद्योगों में काम करने वाले मज़दूरों का काफी ऊपर उठा, मज़दूरी में 103.6 प्रतिशत की वृद्धि हुई। इस समय तक सोवियत संघ में बेरोजगारी का उन्मूलन कर दिया गया था। 1929-32 के दौर में जहां पूंजीवादी देशों में बदहाली का आलम था वहीं सोवियत संघ में आम जनता की समृद्धि और खुशहाली लगातार बढ़ती जा रही थी।

# पार्टी की बुनियादी समझदारी

(पेज 4 का शेष)

हल नहीं हुआ होता है कि समाजवाद जीतेगा या पूंजीवाद। इस रचना में वे यह भी दिखलाते हैं कि सर्वहारा वर्ग और बुर्जुआ वर्ग के बीच वर्ग-संघर्ष लम्बे समय तक चलेगा, और यह उतारों और चढ़ावों से भरा होगा और यह कि समय-समय पर यह बहुत तीखा होगा। उन्होंने पूरी पार्टी और जनता का, अंत तक हर मोर्चे पर समाजवादी क्रांति जारी रखने के लिए आह्वान किया। इन सैद्धान्तिक मार्गदर्शक सूत्रों ने ल्यू श्याओ-ची और "वर्ग-संघर्ष का विलोपीकरण" वाले गुट की निरर्थक बकवासों की धज्जियां उड़ा डालीं, और हमें साफ तोर पर सर्वहारा के अधिनायकत्व के अन्तर्गत क्रांति जारी रखने के लिए अपनायी जाने वाली दिशा दिखलायी। 1959 में, पेंग ते-हुआई की अवसरवादी लाइन की आलोचना के समय अध्यक्ष माओ ने काफी जोर देकर कहा **"लूशान का संघर्ष एक वर्ग-संघर्ष है, दो मुख्य शत्रु वर्गों सर्वहारा वर्ग और बुर्जुआ वर्ग के बीच जीवन-मरण के संघर्ष का विस्तारण है, एक संघर्ष जो पिछले दस सालों से समाजवादी क्रांति में जारी है।"** *(पीकिङ रिव्यू, 43, अक्टूबर 26, 1973 में उद्धृत)।* उन्होंने पार्टी को इस दीर्घकालिक संघर्ष को पहचानना सिखाया। सितम्बर, 1962 में आठवीं केन्द्रीय कमेटी के दसवें प्लेनरी सेशन के दौरान, अध्यक्ष माओ ने एक बार फिर हमारे देश में और दुनिया भर में सर्वहारा के अधिनायकत्व के ऐतिहासिक अनुभवों का समाहार किया और समाजवाद के सम्पूर्ण ऐतिहासिक दौर के लिए पार्टी की बुनियादी कार्यदिशा को और भी बोध गम्य रूप में सूत्रीकृत किया। लेकिन ल्यू श्याओ-ची और उसके गिरोह ने फिर पार्टी की बुनियादी कार्यदिशा को झुठलाने और उसका विरोध करने की कोशिश की। समाजवादी शिक्षा आंदोलन के दौरान **"चार शुद्धताओं और चार अशुद्धताओं के बीच अंतरविरोध" और "पार्टी के अंदर और बाहर अंतरविरोधों का अन्तर्मंथन"** जैसी बेतुकी बातों का, पार्टी की बुनियादी कार्यदिशा का विरोध करने, दो वर्गों, दो रास्तों और दो कार्यदिशाओं के बीच के संघर्ष को छिपाने, और पार्टी के पूंजीवादी पथगामी नेतृत्व के लोगों के विरोध वाले आंदोलन को पथभ्रष्ट करने के लिए प्रचार करते हैं। जनवरी, 1965 में केन्द्रीय कमेटी के राजनीतिक ब्यूरो द्वारा बुलाये गए राष्ट्रीय मज़दूर सम्मेलन में ल्यू श्याओ-ची और उसी बिरादरी के लोगों के छलावों को दिए जवाब में बताया गया था: **"संक्रमण के पूरे दौर में सर्वहारा वर्ग और बुर्जआ वर्ग के बीच वर्ग-अंतरविराध, वर्ग-संघर्ष और समाजवादी राह और पूंजीवादी राह के बीच संघर्ष अस्तित्वमान रहता है। अगर हम अपनी पार्टी के पिछले बारह-तेरह सालों के इस मूलभूत सिद्धान्त और व्यवहार को भूल जायेंगे तो हम पथभ्रष्ट हो जाएंगे।"** *(माओ त्से-तुङ, पीकिङ रिव्यू, सं.-43, अक्टूबर 26, 1973, पेज-5, में उद्धृत)।* अध्यक्ष माओ के नेतृत्व में सम्पूर्ण पार्टी और जनता द्वारा चलाई गई महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति, लिन प्याओ की आलोचना करने, कार्यशैली में सुधार के आंदोलन और साथ ही साथ इन आंदोलनों के दौरान जारी किए गए महत्वपूर्ण दिशा-निर्देशों की श्रृंखला ने पार्टी की बुनियादी कार्यदिशा को पुष्ट और विकसित किया। ल्यू श्याओ-ची के गद्दार गिरोह की धज्जियां उड़ाने के बाद, हमारी पार्टी ने नवीं कांग्रेस की कार्यदिशा पर लिन प्याओ और चेन पो-ता के पार्टी-विरोधी गिरोह के विरुद्ध तीखा संघर्ष छेड़ दिया। लिन प्याओ और चेन पो-ता ने सर्वहारा की तानाशाही के अन्तर्गत संघर्ष जारी रखने का विरोध किया। उन्होंने उत्पादक शक्तियों के सिद्धान्त की फेरी लगाई और समाजवादी क्रांति के साथ ही साथ पार्टी की बुनियादी कार्यदिशा का विरोध किया। यह प्रदर्शित करता है कि लिन प्याओ और चेन पो-ता के विरुद्ध संघर्ष निश्चित तौर पर इस बात का संघर्ष था कि पार्टी की बुनियादी कार्यदिशा पुष्ट होगी या विकृत कर दी जाएगी। महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति के दौरान हमने ल्यू श्याओ-ची के गद्दार गिरोह और लिन प्याओ के पार्टी-विरोधी गिरोह दोनों ही को नष्ट कर दिया और महान जीतें हासिल कीं। लेकिन इस बात पर संघर्ष कि हम पार्टी की बुनियादी कार्यदिशा को दृढ़ता से अपनाने जा रहे हैं या इसे बदलने जा रहे हैं, अभी किसी भी तरह समाप्त नहीं हुआ है – आने वाले लम्बे समय तक हमें यह संघर्ष करते रहना होगा। सभी पार्टी सदस्यों को सर्वहारा की तानाशाही के सशक्तीकरण और पूंजीवादी पुनर्स्थापना को रोकने के व्यापक परिदृश्य से पार्टी की बुनियादी कार्यदिशा को देखना चाहिए। उन्हें इस कार्यदिशा को क़ायम रखने और बचाने के संघर्ष में अपने आप को व्यापक क्रांतिकारी जनता के नेतृत्व में रखते हुए, हमेशा यह बात अपने दिमाग में रखनी चाहिए।

(अगले अंक में जारी)

## सिर्फ कानूनी लड़ाई....

(पेज 5 का शेष)

सबसे अधिक भरोसा करना होगा।

खुद को वामपन्थी कहने वाली कुछेक ट्रेड यूनियनें भी आज मज़दूरों को क़ानूनवाद के दायरे में बांधे रहकर अपनी ट्रेड यूनियन धन्धेबाजी चमकाना चाहती हैं। इस प्रवृत्ति के चंगुल से खुद को आज़ाद करते हुए आज मज़दूरों को अपनी लड़ाई नये सिर से संगठित करनी होगी। हिल्टन के मज़दूर साथियों को भी अपने संघर्ष में कामयाबी हासिल करने के लिए क़ानूनी लड़ाई के अलावा अपने कारखाने के साथ ही इलाके के अन्य कारखानों के मज़दूर साथियों के साथ जुझारू एकता क़ायम करने की गम्भीर कोशिश करनी होगी। इसके साथ ही छात्रों-बुद्धिजीवियों, किसानों एवं संवेदनशील नागरिक आबादी के साथ भी व्यापक एकता क़ायम करने की दिशा में कदम बढ़ाना होगा। केवल इसी कठिन-लम्बे रास्ते पर चलकर ही निराशा की स्थिति में पहुंचने से बचा जा सकता है और मज़दूर आन्दोलन को क्रान्तिकारी धार देने की शुरुआत हो सकती है।

## पंजाब के भट्ठा मज़दूरों के उत्पीड़न और लूट की दर्दनाक दास्तान

# सही लाइन पर संगठित करने की ज़रूरत

इस समय पंजाब में लगभग 2500 ईंट-भट्ठे हैं। हर एक भट्ठे पर औसतन ढाई सौ मज़दूर काम करते हैं इस तरह राज्य में भट्ठों में मज़दूरों की कुल संख्या छः लाख से ऊपर बनती है। इस तरह, यह पंजाब में खेती के बाद उत्पादन क्षेत्र का एक अहम एवं बड़ा धंधा है, जो प्रत्यक्ष तथा परोक्ष तौर पर लाखों परिवारों को रोजी-रोटी मुहैया कराता है।

पूंजी निवेश तथा मज़दूरों की संख्या को देखते हुए लगता है कि यह उद्योग निम्न मध्य दरजे में आता है, लेकिन यहां पर पिछड़ी तकनीक एवं लूट व उत्पीड़न के पुराने नंगे तरीकों के कारण मज़दूरों की हालत दयनीय बनी हुई है। दरअसल भट्ठा मालिकों का बड़ा हिस्सा धनी किसानों, धनाढ्य सूदखोरों, व्यापारियों, आढ़तियों तथा भ्रष्ट सियासतदानों में से आता है, जो अलग-अलग तरीकों से आम लोगों की बेरहम लूट पर फलता-फूलता है और भट्ठा मज़दूरों को भी लूट व उत्पीड़न का शिकार बनाता है। इसलिये भट्ठा मज़दूरों तथा भट्ठा मालिकों का अन्तरविरोध बहुत ही तीखा तथा समझौताविहीन होता है।

### कठोर मेहनत और आर्थिक हालात

भट्ठों पर काम कर रहे मज़दूरों की ज़िन्दगी सख़्त मेहनत की मुंह बोलती दास्तान है। अपने काम का मेहनताना इतना कम मिलता है कि उन्हें अपने परिवार के जीवन की गाड़ी ठेलना भी मुश्किल होता है। ये मज़दूर काम पर स्थाई तौर पर नहीं रखे जाते। इनको वेतन भी कार्य अवधि यानी हफ्तेवार या महीनेवार नहीं दिया जाता बल्कि किये गये काम की मात्रा के अनुसार दिया जाता है। इस तरह वह ठेके पर काम करने वाले मज़दूर बन जाते हैं। इस हालत में मज़दूर एक ओर कम से कम समय में अधिक से अधिक उत्पादन करने के लिए बारह-बारह, चौदह-चौदह घंटे काम करने के लिए मजबूर होते हैं। जेठ आषाढ़ की धूप हो, माघ-पूस की ठंडी रातें इन मजदूरों को तो सिर्फ काम में जुटे रहना है।

काम के हिसाब से भट्ठों पर काम करने वाले मज़दूरों की अलग-अलग श्रेणियां बनती हैं। जैसे पथेरे-मिट्टी से ईंटें पाथने का काम करते हैं। भराई वाले – रेहड़ियां (खच्चर गाड़ियां) के जरिये कच्ची ईंटों को भट्ठे पर पहुंचाने का काम करते हैं। चिनाई वाले भट्ठे के इर्द-गिर्द कच्ची ईंटें चिनते हैं। जलाई वाले या झोंका – ईंटें पकाने के लिए भट्ठे को आग देते हैं। केरी वाले – आग देने से पहले धार को बंद करने तथा ईंटें पकाने के बाद धार को खोलने का काम करते हैं। निकासी वाले – पक्की ईंटों को आले (भट्ठे) से बाहर निकालते हैं। इनके अलावा एक छोटी संख्या मुंशी, जमादार तथा ड्राइवरों की भी होती है। ऊपर की गई श्रेणियों में से पथेरों की संख्या न केवल अधिक होती है बल्कि यह परत मज़दूरों की कुल संख्या का काफी बड़ा हिस्सा बनती है।

इन मज़दूरों के वेतन का अंदाजा नीचे दी गई तालिका से लगाया जा सकता है:

**इन मजदूरों के वेतन का अंदाजा नीचे दी गयी तालिका से लगाया जा सकता है :**

| विभिन्न श्रेणियां | रेट प्रति हजार (1-3-99) | प्रतिदिन कुल काम के घंटे | प्रतिदिन कुल काम की मात्रा | मजदूरों की संख्या | कुल मजदूरी | प्रति मजदूर मजदूरी | माहवार मजदूरी | आठ घंटे के हिसाब से माहवार मदूरी | बोनस | बोनस मिलाकर मासिक वेतन | बोनस मिलकर घंटे प्रतिदिन के हिसाब से मासिक वेतन | 4 छुट्टियां घटाकर मासिक वेतन |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| पथेर | 129 रुपये | 12 | 1500ईंट | 2 | 195.50 | 97.50 | 2932.66 | 1954.66 | 22% | 3357.65 | 2238.43 | 1900 |
| भराई वाला | 49.95 | 12 | 3000ईंट | रेहड़ी +घोड़ा खच्चर + मजदूर | 150 रुपये | 150 रुपये तीन साधानों को | 4500 रुपये | 3000 रुपये | 22% | 5490 रुपये | 3660 रुपये | 3172 रुपये |
| निकासी वाला | 31.45 | 14 | 3200 ईंट | 1 | 102 रुपये | 102 रुपये | 3060 रुपये | 1740 रुपये | 22% | 3673 रुपये | 2122.80 रुपये | 1838 रुपये |
| केरी वाला | 8.47 | - | - | - | - | - | - | - | - | - | 2200 रुपये (अंदाजन) | - |
| चिनाई वाला | 10.29 | 12 | 60000 ईंट | 4 | 613.40 रुपये | 153.35 रुपये | 4600.50 रुपये | 3067 रुपये | 22% | 5622.50 रुपये | 37.40 रुपये | 3240 रुपये |
| जलाई वाला | - | 8 | - | - | - | - | - | - | - | - | 2200 रुपये (अंदाजन) | - |
| मुंशी, ड्राइवर आदि | - | - | - | - | - | - | - | - | - | - | लगभग 2000 रुपये | - |

नोट: पथेरों की मजदूरी में से जमादारी कमीशन नहीं लिया जाता जबकि श्रेणी के मज़दूरों की मज़दूरी से लिया जाता है। पथेरों में से जमादार बनाये मज़दूरों को आठ रुपये प्रति हजार ईंट जमादारी कमीशन दिया जाता है।

– सरकारी दरों में कोई ब्यौरा न होने के बावजूद मालिक 4 रुपये प्रति हजार ईंट निकासी वाले तथा भराई वाले मज़दूरों की मजदूरी में से कमीशन काटकर अपनी जेब में डाल लेते हैं।

– यह तालिका कुछ भट्ठा मज़दूरों द्वारा की गई पड़ताल पर आधारित है, इसलिए मज़दूरी के सम्बन्ध में बिल्कुल सही तस्वीर पेश करने के बजाय एक मोटा अंदाजा प्रस्तुत करती है।

तालिका को एक नज़र देखने से पता चल जाता है कि बिना किसी छुट्टी के महीने भर 12 से 14 घंटे की मेहनत से एक पथेर को 3357.65 रुपये, भराई वाले को 5490 रुपये, निकासी वाले को 3673.20 रुपये, चिनाई वाले को 5622.50 रुपये, केरीवाले तथा जलाईवाले को 2200 रुपये प्रति माह मिलते हैं। अगर ये मजदूर रोजाना आठ घंटे काम करें तथा अपने थके-टूटे जिस्मों को थोड़ा आराम देने के लिए महीने में चार दिन छुट्टी पर रहें तो उनकी मज़दूरी इससे कहीं कम होगी, जैसा तालिका में देखा जा सकता है। इस मज़दूरी के अलावा किसी प्रकार का भत्ता जैसे मकान भत्ता, महंगाई भत्ता, चिकित्सा भत्ता वगैरह नहीं दिया जाता, इसलिए यही मज़दूरी उनकी कुल मासिक आमदनी बनती है।

एक-दो श्रेणियों (केरीवाले तथा जलाईवाले) को छोड़कर बाकी श्रेणियों के मज़दूरों की मज़दूरी देखने में गुजारे लायक लगती हैं, पर हकीकत यह नहीं है। इसका कारण है कि भट्ठों पर पूरे साल काम नहीं चलता। साल में छः महीने भट्ठे बन्द रहते हैं। इन छः महीनों में मज़दूर या तो खाली हाथ बैठने को मजबूर होते हैं या फिर काम की तलाश में जगह-जगह भटकते हैं तथा कभी-कभार काम मिलने पर चार पैसे कमा लेते हैं अगर कोई काम मिलता भी है तो इसका एक हिस्सा किराये भाड़े की भेंट चढ़ जाता है। कुल मिलाकर इन छः महीनों में वह अपनी आमदनी में मामूली इजाफा ही कर पाते हैं। असल में भट्ठे पर काम करके छः महीने में की गई कमाई पर ही मज़दूर के परिवार को गुजारा करना पड़ता है यह आमदनी परिवार के खर्चे से कहीं कम पड़ती है। भराई वाले मज़दूरों की 5490 रुपये की मासिक आमदनी वैसे ही तीन हिस्सों में बंट जाती है। एक हिस्सा परिवार को चला जाता है। दूसरा हिस्सा घोड़ा-खच्चर की खरीद हेतु लिये गये कर्ज के मूल तथा सूद की किश्त चुकाने तथा उसकी खुराक पर खर्च हो जाता है। तीसरा हिस्सा रेहड़े (गाड़ी) के लिए लिये गये कर्ज की किश्त चुकाने तथा उसकी मरम्मत वगैरह पर खर्च हो जाता है। इस तरह उसके हाथ में आई आमदनी दूसरे मज़दूरों से अधिक नहीं होती।

भट्ठा मज़दूरों को मिलने वाली मज़दूरी साल भर अपने परिवार का गुजारा चला सकने के लिए नाकाफी है। बच्चों की पढ़ाई-लिखाई तो दूर की बात है, इस आमदनी से परिवार के लिए दो जून की दाल-रोटी, पहनने के लिए कपड़ा और सिर ढंकने के लिए छत का प्रबन्ध भी मुश्किल है। बीमार पड़ने पर दवा-दारू, जन्म-मरण, तीज-त्योहार तथा शादी-ब्याह जैसे अवसरों पर होने वाले खर्च अलग से हैं। इन सभी जरूरतों पर होने वाले खर्च के लिए आमदनी पूरी नहीं पड़ती, जो मज़दूरों के कर्ज के जाल में फंसने का कारण बनता है। अगर कभी कोई मज़दूर या उसके परिवार का कोई सदस्य किसी गंभीर बीमारी का शिकार हो जाये या किसी भराई वाले मज़दूर का घोड़ा या खच्चर मर जाये तो उस समय होने वाला खर्च उनके सिर पर बिजली बनकर गिरता है। इसके लिये उनको कर्ज लेना पड़ता है। भट्ठे पर काम करते हुए किसी दुर्घटनावश मज़दूर को कोई चोट लग जाये तो उसका खर्च उसे खुद ही उठाना पड़ता है। भट्ठा मालिक इसकी जिम्मेदारी लेने से इंकार कर देते हैं। अगर दुर्घटना के कारण कोई मज़दूर उम्र भर के लिएअपाहिज अथवा मौत के मुंह में चला जाता है तो इसका खामियाजा भी मज़दूर परिवार को ही भुगतना पड़ता है। भट्ठा मालिक मुआवजा देने से इंकार कर देता है बशर्ते कि उसे किसी बड़े जनदबाव के आगे कुछ न कुछ देने के लिए मजबूर न कर दिया जाये।

ये मज़दूर किस तरह का बदहाल जीवन जीते हैं, इसका अंदाजा अपने गांव से दूरदराज के भट्ठों पर काम करते और वहीं रहते मज़दूरों की हालत पर नज़र डालने से लगाया जा सकता है। ये मज़दूर भट्ठों पर ही बनी छोटी-छोटी झोपड़ियों में रहते हैं। इनमें न तो कोई बिजली होती है और न ही ये हवादार होते हैं। पीने के साफ पानी का भी कोई इंतजाम नहीं होता। बच्चों की पढ़ाई का भी कोई प्रबन्ध नहीं होता है। बीमारों को चिकित्सा सुविधा मुहैया नहीं होती। राशन कार्ड नहीं बनाये जाते हैं। यहां रह रहे मज़दूरों के बच्चे धूल-मिट्टी के आंचल में ही पलते-बढ़ते हैं। जब इनके खेलने-कूदने तथा स्कूल जाने की उम्र आती है, तब इनमें से बहुतेरे दिहाड़ी दार अर्द्ध-गुलामों की फौज का हिस्सा बन जाते हैं।

### शोषण और उत्पीड़न साथ-साथ चलते हैं:

भट्ठों पर स्थानीय (पंजाब के) तथा प्रवासी दोनों तरह के मज़दूर काम करते हैं। ये मज़दूर ग्रामीण क्षेत्र में बेरोजगारी तथा अर्द्धबेरोजगारी की हालत में पहुंचे उजड़े किसानों और खेत मज़दूरों में से आते हैं, जो तथाकथित नीची तथा पिछड़ी जातियों से संबंधित होते हैं। ये गांव के गरीब जीविका के संसाधनों से तो वंचित हैं ही, साथ ही तीखे हो रहे खेती के संकट तथा खेती के मशीनीकरण के कारण खेतों में दिहाड़ी करके गुजर-बसर करने के अवसरों से भी वंचित हो रहे हैं। शासक वर्ग की नयी औद्योगिक नीतियों के कारण देश के अन्य उद्योगों में रोजगार के पहले से ही सीमित अवसर और भी सिकुड़ रहे हैं। रोजगार के अन्य विकल्पों का अभाव इन मज़दूरों को काम की तलाश में भट्ठा उद्योग की ओर धकेलता है और वहां शोषण और उत्पीड़न के दो पाटों के बीच पिसते रहने को मजबूर करता है।

भट्ठा मालिकों ने अपनी आर्थिक सामाजिक हैसियत तथा सत्ता प्रतिष्ठानों में अपनी पहुंच के चलते भट्ठों पर इस तरह की हालत बना रखी है, जहां पर मज़दूरों को बेजुबान जानवरों की तरह काम करते रहना पड़ता है। सबसे पहले तो मज़दूरों को पक्के एवं स्थाई तौर पर नहीं रखा जाता। उनकी बकायदा रजिस्टर पर कोई हाजिरी नहीं लगाई जाती। भट्ठा मालिक जब चाहे मज़दूरों को काम से निकाल सकता है। इसलिए रोजगार की असुरक्षा तथा रोजगार खो देने पर सामने दिखाई देने वाली भुखमरी मज़दूरों को ऐसी असहनीय परिस्थितियों में काम करने को मजबूर करते हैं। दूसरा, मज़दूरों के खिलाफ भट्ठा मालिकों में आपसी रजामंदी होती है। अगर कोई एक भट्ठा छोड़कर दूसरे भट्ठे पर जाना चाहे, तो दूसरा भट्ठा मालिक उसे शक की निगाह से देखता है और आसानी से उसे काम पर नहीं रखता। तीसरे, मज़दूरों का काफी बड़ा हिस्सा अपनी पारिवारिक जरूरतों की पूर्ति के लिए मालिकों का कर्जदार रहता

(पेज 11 पर जारी)

(पेज 3 का शेष)

# चीन में जब सत्ता मजदूरों के हाथ में थी

में जोत दिये जाने वाले घोड़े नहीं समझे जाते। उन्हें इस बात का पूरा अवसर दिया जाता कि "वे अपनी मानवीय क्षमताओं का इस्तेमाल शारीरिक श्रम ही नहीं बल्कि अन्य रूपों में भी कर सकें", वे बुनियादी निर्णयकर्ता थे।

लिंडा नेल्सन के लिए चिकित्सीय देखभाल का प्रश्न एक महत्वपूर्ण विषय था। अमेरिका में हृदय रोग से पीड़ित उनकी बहन को सर्जरी की ज़रूरत थी परन्तु आपरेशन का खर्च उठाने की परिवार की प्रार्थना को बीमा कम्पनी और उनके पिता की यूनियन, दोनों ने ही ठुकरा दिया। लिहाजा उनके पास सिर्फ एक ही चारा बचा कि जो कुछ भी उनके पास था उसे वे बेंच दें। जबकि चीन में, जहां जन कल्याण सर्वोच्च प्राथमिकता में था, उन्होंने यह देखा कि दिमाग की सर्जरी का खर्च सिर्फ 35 अमेरिकी सेण्ट के बराबर था।

नेल्सन ने इस बात का भी जिक्र किया है कि किस प्रकार अवकाश प्राप्त कोयला खान कामगारों की ज़रूरतों का ख्याल चीन सरकार करती थी। उसके पहले तक बहुतेरे बुजुर्ग अपनी देखभाल के लिए अपने बाल-बच्चों पर निर्भर रहते थे। परन्तु पुराने चीनी समाज में कोयला मज़दूरों की तनख्वाहें इतनी कम थीं कि घर बसाना उनके बूते के बाहर हो रहा था, ऐसे में उनके अपने बच्चे ही नहीं होते जो उनकी देखभाल करते। लिंडा फूशुन में एक रिटायर कोयला खदान मज़दूरों के लिए बना मकान देखने गई और उन्होंने पाया कि वहां देखभाल की सर्वोत्तम व्यवस्था उन बुजुर्गों को हासिल थी और वे कम्युनिस्ट घोषणापत्र का अध्ययन कर रहे थे। वे बुजुर्ग खनिक आस-पास के कस्बों में जाकर नौजवानों को यह बताते कि मुक्ति से पूर्व के दिनों में जीवन कितना कठिन हुआ करता था।

आज पूंजीवादी चीन में कारखानों, खदानों में काम करने की बेहद कठोर परिस्थितियां फिर से पैदा हो गयी हैं। पिछले वर्ष उद्योगों और खान दुर्घटनाओं में सरकारी आंकड़ों के ही अनुसार 4,200 मज़दूर मौत के मुंह में समा गये। आज समूची दुनिया में चीन की खदाने सर्वाधिक खतरनाक हैं। विश्व कोयला उद्योग में अपनी जान गंवा देने वाले मज़दूरों का चौथा-पांचवां हिस्सा यहीं का होता है। 2370 मज़दूर अकेले पिछले वर्ष के पहले छः महीनों के दरमियान खान दुर्घटनाओं में मारे गये। अभी हाल में दक्षिणी चीन के शुइचिंग शहर में एक कोयला खान में गैस विस्फोट के हादसे मे 180 मज़दूर अपनी जान से हाथ धो बैठे। एक सर्वेक्षण के अनुसार, 'कई खानें बहुत जर्जर अवस्था में हैं, उनमें आग पर काबू पाने और वायु संचार के लिए पर्याप्त साधनों का अभाव है और सुरक्षा नियमों को ताक पर रख दिया गया है।'

उन दिनों की अपेक्षा जब चीन एक समाजवादी देश था, हालात में यह एक डरावना परिवर्तन था। चाइना रिकन्सट्रक्ट्स में 1974 का एक आलेख 'सुरक्षित कोयला खनन के लिए' एक ऐसा दस्तावेज है जिसे चीनी जनता ने क्रान्ति के दौर में सही प्रमाणित कर दिखाया था। इस लेख के लेखक, यूशन हान, लाइओनिंग कोल रिसर्च इन्स्टीट्यूट में इंजीनियर थे। वे 1949 के पहले की हालात का जिक्र करते हैं जब खान मज़दूर "भीषण परिस्थितियों में काम करते थे और खदानों में पानी भरने, चट्टानी गुफाओं में फंस जाने, आग लगने व गैस रिसाव के चलते उनकी जान पर लगातार खतरा मंडराता रहता। 1943 में, सिचुआन के टिआनफु कोयला क्षेत्रों में मैंने एक पूंजीपति को भड़क उठी आग पर काबू पाने के लिए खान मज़दूरों को खाली हाथ उस ख़तरनाक क्षेत्र में बलात भेजते देखा। नतीजतन उनमें से बहुतेरे मारे गये। उसी साल हुआफेंग खान में एक गैस विस्फोट ने जमीन के नीचे काम कर रहे सभी मज़दूरों को लील लिया।" फूशुन क्षेत्र में, जहां उनका ठिकाना था, 1916 से 1944 के दरमियान 2,50,000 दुर्घटनाएं हुईं।

यूशुन के अनुसार चीन में मुक्ति के बाद कम्युनिस्ट पार्टी और जनसाधारण की सरकार ने कोयला खनन को सुरक्षित बनाने पर अत्यधिक जोर दिया। सरकार ने सुरक्षा के साधनों को शक्तिशाली बनाया सुरक्षा सम्बन्धी नियमों को सख्त किया, खनिकों को बचाव की नियमित जानकारियां दीं और खानों में राहत कार्य व सुरक्षा हेतु यंत्रों तथा उपकरणों के निर्माण के लिए फैक्टरियों की स्थापना की। राज्य सरकार द्वारा दिखाये गये इस सरोकार ने "चीन के वैज्ञानिकों और तकनीशियनों को सक्रियता और सृजनशीलता के साथ इस क्षेत्र में काम करने की जबर्दस्त प्रेरणा दी।"

तकनीशियनों ने न केवल समस्याओं का अध्ययन किया बल्कि खदान मज़दूरों के साथ खानों में जाकर काम भी किया। यूशुन लिखते हैं कि, किस प्रकार तकनीशियनों ने फूशुन के कोयला खदानों में नीचे उतर कर मज़दूरों से चीज़ों के बारे में सीखा और चट्टानी परतों में छेद बनाने की ऐसी विधि विकसित की जिसके जरिये उसके अन्दर की गैस को खनन शुरू करने के पहले खींचकर बाहर निकाला जा सके। उन्होंने ग्यारह प्रान्तों में गैस विषयक समस्याओं के बारे में विस्तृत जांच-पड़ताल की और विभिन्न जगहों के भूतत्व सम्बन्धी परिस्थितियों के हिसाब से गैस खींच निकालने के तरीके विकसित किये। बहुत सी खानों से इस प्रकार निकाली गई गैस का इस्तेमाल ईंधन के रूप में किया जाता। तकनीशियनों ने 'विस्फोटों' अर्थात कोयला चट्टान की दरारों से गैस की भारी मात्रा का आकस्मिक वेग के साथ निकलने की समस्या पर, जिसकी वजह से चट्टानें धंस सकती थीं, काबू पा लिया। साथ ही, खानों में उतरकर और खान मज़दूरों से विचार-विमर्श करते हुए तकनीशियनों ने समस्याओं के निदान के लिए विज्ञान का सहारा लिया और यह सीखा कि हाइड्रालिक फ्रैक्चरिंग (Hydraulic Fracturing) विधि का इस्तेमाल करके किस प्रकार इस खतरे को कम किया जा सकता है। यूशुन यह स्पष्ट करते हैं कि सभी समस्याएं हल हो गई हों ऐसा नहीं था परन्तु इस दृष्टिकोण को अपनाकर ऐसी तमाम उपलब्धियां हासिल की गयीं।

यदि हम चीन में समाजवाद के इतिहास पर नज़र डालें तो हम यह देखेंगे कि मनुष्य जाति में किसी भी ऊंचाई तक जाने की अपार संभावनाएं हैं। यह बताता है कि समाज के स्वामी अगर मज़दूर हों तो क्या कुछ संभव हो सकता है।

('रिवोल्यूशनरी वर्कर' में प्रकाशित एम.आरफियस के लेख का संपादित अंश)

# होण्डा प्रबन्धतन्त्र और मज़दूरों के बीच रस्साकशी जारी है!

बिगुल प्रतिनिधि

रुद्रपुर (ऊधमसिंह नगर) 1, अगस्त। जनरेटर बनाने वाले कारखाने 'होण्डा पावर प्रोडक्ट्स लि.' में एल्युमिनियम मशीन शाप और कुछ अन्य कम्पोनेण्ट्स के स्थानान्तरण को लेकर प्रबन्धतन्त्र और यूनियन के बीच रस्साकशी ज़ारी है। जहां एक तरफ होण्डा प्रबन्धतन्त्र मज़दूरों पर अंकुश बढ़ाने के साथ ही, पिछले सात माह के दौरान मज़दूरों के लिए चौथी बार सवैतनिक कार्यबन्दी करने जा रहा है वहीं 'श्रीराम होण्डा श्रमिक संगठन' ने अपने विरोध प्रदर्शन तेज कर दिये हैं। प्रबन्धकों द्वारा यूनियन अध्यक्ष और मंत्री को धमकी भरे पत्र देने के बावजूद मज़दूरों के हौसले बुलन्द हैं और वे अन्तिम दम तक संघर्ष के लिए कमर कस रहे हैं।

होण्डा प्रबन्धक एक लम्बी कार्ययोजना पर काम कर रहा है। वह जापानी रणनीति के तहत कारखाने को टुकड़े-टुकड़े में बांटकर और मज़दूर आबादी को बिखराकर उत्पादन करना चाहता है। चूंकि इस कारखाने में ठेका, कैजुअल, परमानेण्ट मज़दूरों की एकता की प्रतीक मजबूत, जुझारू यूनियन रही है, इसलिए प्रबन्धतन्त्र किश्तों में कार्रवाइयां कर रहा है। इसके लिए उसने पहले वेल्डिंग-पेण्टिंग आदि से कुछ काम बाहर ठेके पर भेजने शुरू किये। परिवहन, कैण्टीन, सुरक्षा, बागवानी आदि के कई काम ठेकेदारी में दे दिये गये। प्रबन्धकों ने स्थायी-अस्थायी और क्षेत्रवाद के घिनौने बंटवारे की असफल कोशिशें की। अब वह कारखाने की रीढ़ को ही – एल्युमिनियम मशीन शाप को – यहां से शिफ्ट करने की तैयारी कर चुका है। जाहिरा तौर पर इससे पैकिंग-स्टोर आदि विभागों पर भी सीधा असर पड़ेगा। असेम्बली प्लाण्ट का ज्यादातर काम पाण्डिचेरी इकाई में स्थानान्तरित होता जा रहा है। धीरे-धीरे स्थिति ऐसी पैदा होने वाली है कि 26 करोड़ मुनाफे वाला यह कारखाना अचानक घाटे वाले कारखाने के रूप में तब्दील हो जायेगा, और फिर अन्ततः कारखाने में छंटनी होगी, तालाबन्दी होगी। उस वक्त तक मज़दूर लड़ने की स्थिति में ही नहीं रह जायेंगे।

यूनियन ने सही समय पर जापानी लुटेरों के नापाक इरादे को भांप लिया और प्रतिरोध की रणनीति बनानी शुरू कर दी। कारखाने के भीतर एकता बनाने के प्रयासों के साथ ही यूनियन ने इलाकाई मज़दूर एकता के प्रयास तेज कर दिये हैं। 'जागो हो बार-बार, जागो फिर एक-बार' शीर्षक पर्चे के व्यापक वितरण के साथ ही गेट मीटिंगों आदि का क्रम भी तेज हो चुका है। दूसरी तरफ मुख्यमंत्री से लेकर श्रमायुक्त-उपश्रमायुक्त, जिला प्रशासन तक स्थिति से अवगत कराने के पत्र भी यूनियन लगातार भेजती रही है। कारखाने के मज़दूर इसे अपनी अस्मिता का प्रश्न बना चुके हैं।

चूंकि होण्डा के मज़दूरों के संघर्षों का एक लम्बा इतिहास रहा है – अपने कारखाने के भीतर भी और क्षेत्र के अन्य मज़दूर आन्दोलनों में वर्गीय पक्षधरता के साथ शिरकत करने के स्तर पर भी। इसलिए होण्डा के वर्तमान आन्दोलन को क्षेत्र का मज़दूर बड़ी ही आशा भरी निगाहों से देख रहा है।

(पेज 1 का शेष)

# ...आर्थिक "सुधार", यानी

की कीमत 19.64 डालर थी। 1991-92 में –उदारीकरण के शुरुआती दौर में ही – दो बार किये गये अवमूल्यन के बाद छलांग लगाकर डालर का भाव 31.32 रुपये हो गया। तबसे यह अवमूल्यन जारी है और आज यह साढ़े सैंतालिस रुपये तक पहुंच चुका है। 1991 में भारत के ऊपर करीब 2,00,000 करोड़ रुपये का विदेशी कर्ज था। 10 वर्षों के भीतर यह करीब 4,70,000 करोड़ रुपये (लगभग 100 अरब डालर) तक पहुंच गया। हालात ये है कि देश में पैदा होने वाला हर बच्चा आज 10 हजार रुपये का कर्जदार होकर पैदा होता है।

आर्थिक सुधारों के इन दस वर्षों के दौरान अमीरी-ग़रीबी की खाई लगातार बढ़ती गयी है। अल्पसंख्यक धनिक वर्ग और ज्यादा धनी होता चला गया है और नीचे की बहुसंख्यक गरीब जनता और ज्यादा विपन्न होती गयी है। इस दौरान पूंजीवादी "जायज" लूट के साथ उसकी "नाजायज" सन्तानें भी और ज्यादा फली-फूली हैं और काले धन की एक समानान्तर अर्थव्यवस्था खड़ी हो चुकी है। एक अनुमान के अनुसार, इसका परिमाण सफेद धन की वैध अर्थव्यवस्था से भी बड़ा हो चुका है। शेयर बाज़ार की सट्टेबाजी ने पूरी तरह परोपजीवी धनी तबकों की एक पूरी नयी कतार पैदा की है, जिनका वास्तविक उत्पादन से कोई रिश्ता नहीं है।

अमीरी-ग़रीबी की बढ़ती खाई का अंदाजा महज इस बात से लगाया जा सकता है कि 1990-91 से 1998 के बीच ग़रीबों की संख्या में 11.5 करोड़ से ज्यादा की वृद्धि हुई है जबकि डच-ब्रिटिश यूनीलीवर की भारतीय शाखा हिन्दुस्तान लीवर की आय 1991 के 1800 करोड़ रुपये से बढ़कर 1999 में 11,400 करोड़ रुपये हो गयी और भारतीय रिलायंस ग्रुप का कारोबार 2954 करोड़ से बढ़कर 1999-2000 में 21,562 करोड़ रुपये तक पहुंच गयी।

ऊपर की बीस फीसदी धनिक आबादी के लिये नित नये महंगे सामानों से बाज़ार पटता जा रहा है। दुनिया भर के सौदागरों की नज़र इसी उपभोक्ता आबादी पर है। परिणामतः बजाज आटो ने अभी-अभी 90 हजार रुपये मूल्य की दो पहिया मोटर साइकिल बाज़ार में उतारी है। सिएलो, होण्डा ओपल, एस्ट्रा से लेकर मर्सिडीज बेंज सहित तमाम विश्व प्रसिद्ध कारें भारतीय सड़कों पर दौड़ने लगी हैं। कई हजार रुपये तक की कीमत वाले जूते बाज़ार में आ चुके हैं। विश्व प्रसिद्ध सौन्दर्य प्रसाधनों, फास्ट फूड्स और शीतल पेयों से बाज़ार पट गये हैं। हाथी सुई में प्रवेश कर सकता है लेकिन देश की 80 फीसदी आम जनता इन महंगी उपभोक्ता सामग्रियों की दुकानों में नहीं जा सकती। जबकि इसी दौरान प्रति व्यक्ति खाद्यान्नों और वस्त्रों आदि बुनियादी आवश्यकताओं की खपत लगातार कम होती जा रही है। 1991 में प्रति व्यक्ति प्रतिदिन खाद्यान्न की उपलब्धता 510 ग्राम से घटकर 1995 में 475 ग्राम रह गयी थी। ग़रीबों की एक भारी आबादी भूख और कुपोषण की शिकार है।

भारत की खस्ताहाल सड़कों पर कारों-मोटर साइकिलों की भीड़ बढ़ती जा रही है तो आम जनता की सवारी – सार्वजनिक परिवहन सेवाओं की स्थिति असहनीय रूप से बदतर हुई है। किराये हर वर्ष बढ़ते जा रहे हैं। महंगे नर्सिंग होमों व निजी अस्पतालों की बढ़ती सुविधाओं के समान्तर सरकारी अस्पतालों की स्थिति अत्यन्त बदतर होती जा रही है। अब तो सरकारी अस्पतालों में भी हर बात के लिये फीसें वसूली जा रही हैं। आम जीवनोपयोगी दवाओं की कीमतों में इन दस वर्षों के दौरान पांच गुने से भी अधिक की बढ़ोत्तरी हो चुकी है। शिक्षा के क्षेत्र में भी धनी-ग़रीब के बीच की खाई पहले के मुकाबले काफी ज्यादा चौड़ी हो चुकी है। महंगी व्यावसायिक शिक्षा, फीसों में लगातार वृद्धि, विश्वविद्यालयों के विभिन्न पाठ्यक्रमों का निजीकरण, भुगतान सीट के नाम पर सीटों का आरक्षण, मध्यम वर्ग के एक पूरे परिवार की आय से भी अधिक मासिक फीस वाले बच्चों के अभिजात स्कूल – शिक्षा क्षेत्र के एक दशक की प्रगति का ब्योरा है। सुरसा के मुंह की तरह महंगाई लगातार बढ़ती जा रही है। जहां एक तरफ कम्प्यूटर-टेलीविजन आदि की कीमतों में गिरावट हो रही है और इन्हें सब्सिडियां दी जा रही हैं, वहीं गेहूं, चावल, दाल, फल, सब्जियों से लेकर बिजली तक की कीमतें लगातार बढ़ती गयी हैं। सार्वजनिक वितरण प्रणाली (राशन की दुकानों) को संकुचित किया जा रहा है। हालात ये हैं कि महंगाई 1993-94 में 0.1 फीसदी से बढ़कर 30 जून, 2001 तक 160.9 अंक हो चुकी है। बढ़ती महंगाई और आय में कमी से ग़रीब आबादी का दरिद्रीकरण बढ़ रहा है और एक छोटा सा उपभोक्ता वर्ग लगातार समृद्धि की ओर अग्रसर है।

1991 में कांग्रेसी सरकार ने जिन "सुधारों" की शुरुआत रोते-हिचकिचाते हुए की थी, संसदीय वामपंथियों से युक्त संयुक्त मोर्चे की सरकार ने उसके लिये रास्ता साफ किया तो भाजपा की अगुवाई वाली राजग सरकार बड़ी ही बेहयाई और निर्भीकता के साथ तीव्र गति से इसे लागू कर रही है। आलम यह है कि प्रधानमंत्री-वित्तमंत्री से लेकर सरकारी विशेषज्ञ और पूंजीवादी कलमघसीट तक यह दलीलें दे रहे हैं कि 'सरकार का काम सरकार चलाना है, रेल-बस-स्कूल-अस्पताल या कारखाना चलाना नहीं।' भला मुनाफाखोरों की सरकार से उम्मीद ही क्या की जा सकती है? उदारीकरण के इन दस वर्षों में यह बात एकदम खुलकर सामने आ गयी है कि पूंजीवादी समाज में सरकारें पूंजीपतियों की 'मैनेजिंग कमेटी' ही होती हैं।

(अगले अंक में जारी)

# यह सुलगता कोयला दहकेगा, एक दिन ज़रूर दहकेगा

रानीगंज, अगस्त 2001 (बिगुल प्रतिनिधि)। पूंजीपतियों के लिए स्वर्ग का दरवाजा खोलने वाली उदारीकरण-निजीकरण की नीतियां कोलियरी में काम करने वाले लाखों मज़दूरों व उनके परिवारों को मौत के मुंह में धकेल रही हैं।

अब तक साठ हजार मज़दूरों को, वी.आर.एस. देकर छंटनी की जा चुकी है और 64 कोलियरियों को घाटा दिखाकर बन्द कर दिया गया है। तथाकथित रूप से घाटे में चल रही 34 कोलियरियों को कभी भी बन्द किया जा सकता है। बन्द हुई 64 कोलियरियों के मज़दूर व उनके परिवार न जाने कहां ठोकरें खा रहे होंगे, अभी चल रही 34 कोलियरी के मज़दूरों की ज़िन्दगी को भी इस बाजारू व्यवस्था ने नारकीय बना दिया है। कहने को तो प्रबन्धतंत्र दावा करता है कि मज़दूरों की छंटनी नहीं होगी, लेकिन हालात यह है कि, जमीन के सौ-सौ फीट नीचे अपनी जान हथेली पर लेकर काम करने वाले मज़दूरों को, सिर्फ जीने और मज़दूरों की अगली पीढ़ी पैदा करने में सक्षम रखने भर का मिलने वाला वेतन भी समय से नहीं मिलता है। अनेकों आन्दोलन के बाद, वर्षों पहले एन.सी.डब्लू-6 के तहत पारित नये वेतन बोर्ड को लागू करना तो दूर की बात है।

नतीजतन, धन्धेबाज नेताओं-नौकरशाहों की मिलीभगत से सूदखोरी का जरायम पेशा अपने पूरे शबाब पर है। ज़िन्दगी की मजबूरी ने मज़दूरों की भारी आबादी को सूदखोरों के चंगुल में फंसने को मजबूर कर दिया है।

आज कोलियरी का प्रबन्धतंत्र अधिक से अधिक काम ठेके पर करा रहा है। कल का नौकरीशुदा मज़दूर आज दिहाड़ी पर काम करने वाला ठेका मज़दूर बन गया है। गद्दार ट्रेड यूनियनों, ठेकेदारों और प्रबंधन की मिलीभगत से ये मज़दूर 60 रुपये दिहाड़ी मज़दूरी लेकर काम करने को मजबूर हैं।

मज़दूरों की पी.एफ. व ग्रेच्युटी का पैसा भी उन्हें बरसों-बरस दौड़ने और मोटी रकम खर्च करके ही मिल पाते हैं। धन्धेबाज नेताओं-नौकरशाहों की मिलीभगत से मज़दूरों को वी. आर.एस. के तहत छंटनी कराने का धंधा जोरों पर चल रहा है। कहावत है कि 'चोर-चोर मौसेरे भाई', कारखानों-खदानों के छोटे लुटेरों से लेकर बड़े लुटेरों तक मिलकर मज़दूरों को लूट रहे हैं।

इस लूट का आलम यह है कि पिछले दिनों परास कोलियरी का एक मज़दूर वर्षों से अपनी ग्रेच्युटी के पैसों के लिए भटकते-भटकते पागल हो गया। एक दिन उसका गला रेतकर हत्या कर दी गयी। सभी अच्छी तरह समझ रहे हैं कि यह किसी सूदखोर की करतूत है, जिसने उसकी पूरी रकम डकार ली। लेकिन इस पर किसी तरह की कोई कानूनी कार्रवाई आज तक नहीं हुई।

1973 में जब कोयला उद्योग का राष्ट्रीकरण किया गया था तब सरकार ने तर्क यह दिया था कि कोयला खदान मज़दूरों को निजी पूंजीपतियों और सूदखोरों के चंगुल से आज़ाद कराने के लिए और मज़दूरों को बेहतर सुविधाएं मुहैया कराने के लिए ऐसा किया जा रहा है। आज यह साबित हो गया है कि राष्ट्रीकरण के पीछे सरकार का असली इरादा उद्योगों के लिए ऊर्जा के इस सस्ते-परम्परागत स्रोत की बेहतर उपलब्धता सुनिश्चित करना था।

राष्ट्रीकरण के बाद भी मज़दूरों की ज़िन्दगी में बस मामूली बदलाव आया। मज़दूरों का कुछ वेतन बढ़ा, थोड़ी रोजगार सुरक्षा मिली, लेकिन बस इतना ही। निजी खदान मालिकों-मैनेजरों की जगह कोल इंडिया लिमिटेड के नौकरशाहों ने ले ली। इसके साथ ही मज़दूर हितों की ठेकेदारी करने वाले ट्रेड यूनियन नौकरशाही का बोझ भी उनके सिर आ गिरा। आज जबकि देश में उद्योगों का एक मजबूत ताना-बाना खड़ा हो चुका है और देशी बड़े पूंजीपति इतने सक्षम हो चुके हैं कि वे इस परम्परागत ऊर्जा क्षेत्र में भी पूंजी निवेश कर अपना मुनाफा बटोर सकें तो एक बार फिर कोयला उद्योग का निजीकरण किया जा रहा है। एक बार फिर निजी कोयला खदानों के दिनों के बर्बर शोषण-उत्पीड़न की भूमिका लिखी जा चुकी है। कोयला उद्योग के निजीकरण के पहले चरण में कोयला मंत्रालय ने कोल इंडिया लिमिटेड के देश भर में फैले कोयला नियंत्रक दफ्तरों और बिक्री दफ्तरों में कार्यरत अधिकारियों-कर्मचारियों की संख्या कम करने के निर्देश जारी कर दिये हैं। इसके लिए के.पी. गीताकृष्णन की अध्यक्षता में गठित व्यय सुधार आयोग की सिफारिशों को आधार बनाया गया है। कोल इण्डिया लिमिटेड पहले ही बोकारो, राउरकेला, दुर्गापुर और भिलाई स्थित अपने बिक्री दफ्तरों को बन्द कर चुकी है।

कोयला मंत्रालय का प्रस्ताव है कि कोयला नियंत्रक के दफ्तर को पूरी तरह समेट दिया जाये। दिल्ली, नागपुर, विलासपुर और कोलकाता में इसके कई दफ्तर हैं। कोयला नियंत्रक का पद इस मायने में महत्वपूर्ण है कि कोयले के आवंटन और खदानों में खुदाई की इजाजत देने का अधिकार इसी के पास है। मंत्रालय में इस समय इसके लिए वैकल्पिक व्यवस्था पर विचार-विमर्श चल रहा है।

जाहिर है यह वैकल्पिक व्यवस्था निजीकरण की दिशा में ही उन्मुख होगी। गीताकृष्णन आयोग ने कोयला मंत्रालय के खर्चों को कम करने की सिफारिश देने के अलावा कोयला खदान राष्ट्रीयकरण कानून – 1973 में संशोधन कर इस क्षेत्र में निजी कम्पनियों को भी दाखिल होने देने की सिफारिश की है। रपट में कोल इण्डिया लिमिटेड के प्रभुत्व को कम करने एवं इसकी सहयोगी कम्पनियों को अधिक स्वायत्तता देने की सिफारिश भी की गयी है।

इन सिफारिशों को अमल में लाने में जो भी समय लगे, लेकिन इनकी दिशा स्पष्ट है और नतीजों के बारे में भी आज ही भविष्यवाणी की जा सकती है। इस टिप्पणी के शुरुआती हिस्से में जिन तथ्यों-घटनाओं का उल्लेख किया गया है वे तो सिर्फ चन्द नज़ीरें हैं। निजी कोयला कम्पनियों के मैनेजरों, सूदखोरों और ट्रेड यूनियन दलालों के चंगुल में कोलियरी के मज़दूरों की ज़िन्दगी पहले से कई गुना अधिक असह्य होती जायेगी। मुनाफे की अन्धी हवस आने वाले दिनों में कई चासनाला, कई बागडिगी को अंजाम देगी।

लेकिन, यह मानना बहुत बड़ी भूल होगी कि कोलियरी के मज़दूरों की ज़िन्दगी इसी तरह धीरे-धीरे सुलगने वाले कोयले की तरह सुलगकर राख होती रहेगी। धीरे-धीरे सुलगता हुआ कोयला दहक भी उठता है। पूरे देश में जिस तरह का वातावरण बन रहा है, उसे देखते हुए यह सम्भावना अब बहुत अधिक दूर नहीं है।

# मजदूर साथियों सेचन्द दो टूक बातें-एक सीधा आह्वान

**सम्पादक की ओर से**

साथियों,

पिछले कई वर्षों से 'बिगुल' लगातार आपके हाथों में पहुंच रहा है। हालांकि बड़े पैमाने पर मेहनतकश अवाम ने इसका स्वागत किया है और अपने इंकलाबी अखबार के रूप में इसे अपनाया है, पर हम इससे बहुत अधिक की आपसे उम्मीद रखते हैं।

'बिगुल' सही मायने में क्रांतिकारी मजदूर अखबार तभी बन सकता है, जब आप स्वयं कलम उठायें और इसके बारे में तफ़सील के साथ अपनी राय लिख भेजें। आप इसकी कमियों-कमजोरियों के बारे में हमें समझाकर बताइये और जाहिरा तौर पर, यह भी बताइये कि आपको इसमें क्या-क्या अच्छा लगा।

और यही नहीं, हम यह भी चाहते हैं आप अपने कारखाने,वर्कशाप या काम की पूरी परिस्थितियों के बारे में, उनकी हर किस्म की छोटी-बड़ी, कठिनाइयों के बारे में,मालिक, सुपरवाइजर, फोरमैन के व्यवहार के बारे में, काम के घंटों और सुरक्षा प्रबन्धों के बारे में रिपोर्ट तैयार करके भेजिए। आपके यहां वेतन संशोधन, महंगाई भत्ता ओवरटाइम आदि की क्या स्थिति है? लेबर कोर्टों में कितने मामले हैं? छंटनी-तालाबंदी आदि की क्या स्थिति हैं? मालिकों-अफसरों का रवैया उदार है या दमनकारी? किसी न किसी तरह से सताये जा रहे मजदूर को लेबर कोर्ट से क्या इंसाफ मिला है या मिल पाता है?

इस मामले में ट्रेड यूनियनों की क्या भूमिका है? उनके नेताओं की क्या भूमिका है? वे आन्दोलन और संघर्ष द्वारा मालिकों पर कुछ दबाव बनाते हैं या केवल समझौता-वार्ताओं-मध्यस्थताओं-दलाली की राजनीति करते हैं? इन ट्रेड यूनियनों की राजनीतिक भूमिका क्या है? ये तमाम संसदीय पार्टियों से जुड़ी हैं या कुछ स्वतंत्र भी हैं? किन-किन कारणों से ये अलग-अलग हैं और मजदूरों को भी बांट रखा है? यानी इनके आपसी मतभेद के मुद्दे क्या हैं? आपके ख्याल से ट्रेड यूनियन आन्दोलन की स्थिति क्या है? यह तरक्की कर रहा है या इसमें गिरावट आ रही है? आप ट्रेड यूनियनों से क्या चाहते हैं? क्या आज ये मजदूर वर्ग के राजनीतिक संघर्षों की एक अनिवार्य पाठशाला की भूमिका निभा पा रही है? हमें इन सभी मसलों पर आपसे जानकारी चाहिए और आपकी राय चाहिए?

आप समाजवाद, सर्वहारा क्रांति और मजदूर राज के बारे में क्या सोचते हैं? आपके ख्याल से इस ओर आगे बढ़ने यानी पूंजीवाद-साम्राज्यवाद के खिलाफ फैसलाकुन लड़ाई में ट्रेड यूनियन आन्दोलन क्या भूमिका निभायेगा और किस प्रकार?

पूरे देश के पैमाने पर उदारीकरण और निजीकरण की नई आर्थिक नीतियों के लागू होने के बाद से करोड़ों मजदूर बेकार हो चुके हैं, पुराने कारखाने बंद होते जा रहे हैं, गरीब और मध्यम किसान अपनी जगह-जमीन से उजड़ते जा रहे हैं, एक के बाद एक ट्रेड यूनियन अधिकारों को छीना जा रहा है। आपके कारखाने, शहर, गांव या इलाके की क्या स्थिति है? पिछले सात-आठ वर्षों में क्या-क्या विशेष बदलाव आये हैं? हम आपसे यह जानकारी भी विस्तार से चाहते हैं।

आप अपनी कालोनी या बस्तियों की स्थिति अपनी रोजमर्रा की जिन्दगी की परेशानियों-समस्याओं के बारे में भी विस्तार से 'बिगुल' के लिए रपटें तैयार करके भेजिए।

'बिगुल' वेतन भोगी पत्रकारों-कर्मचारियों-एजेण्टों के भरोसे चलने वाला अखबार नहीं है। मज़दूर ही इसके सही संवाददाता हो सकते हैं, पत्रकार हो सकते हैं। मजदूर ही इसके वितरक, एजेण्ट और हाकर होंगे। यह मजदूरों के (और साथ ही मजदूर क्रांति के समर्थक प्रगतिशील बुद्धिजीवियों के) सहयोग से प्रकाशित होता है। इसके सम्पादन और लेखन की टीम से जुड़े जो साथी मध्यमवर्गीय परिवारों से आये हैं, वे भी मजदूरों की जिन्दगी और संघर्षों से जुड़कर एकरूप हो जाने की प्रतिज्ञा किये हुए लोग हैं।

अत: 'बिगुल' द्वारा मजदूरों की क्रांतिकारी आवाज बुलन्द करने के लिए ज़रूरी है कि आप बिगुल के संवाददाता बनें, इसमें नियमित रपटें और लेख भेजें, इसमें छपी चीजों पर अपनी राय और सलाह भेजें, साथ ही अपने इलाके में इसका वितरण करें और ज्यादा से ज्यादा मेहनतकशों तक इसे पहुंचायें।

बहुत ज़रूरी है कि 'बिगुल' को पसन्द करने वाले और इसके मकसद से सहमत मजदूरों को संगठित किया जाये और छोटे-छोटे ग्रुपों में इन्हें इकट्ठा करके मजदूर आन्दोलन, ट्रेड यूनियन आदि की समस्याओं तथा सामाजिक-राजनीतिक स्थितियों पर नियमित बातचीत की जाये तथा मेहनतकश क्रांतियों की समस्याओं, इतिहास, सिद्धान्त आदि पर कुछ पढ़ाई-लिखाई भी की जाये। यह छोटी सी शुरुआत एक महत्वपूर्ण, बहुत बड़ी शुरुआत भी हो सकती है। पहली बात यह है कि कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी हममें एक नई शुरुआत करने का साहस हो, संकल्प हो और यह विश्वास हो कि यह दुनिया यहीं रुकी नहीं रहेगी।

पूरी दुनिया की सम्पदा के निर्माताओं को फिर से बगावत करनी ही होगी और बगावत से क्रांति की दिशा में आगे बढ़ना ही होगा। हमें इन हालात को बदलने के लिए इनको समझना है और इनको बदलने की जद्दोजहद के दौरान खुद को बदल लेना है। मजदूर वर्ग के नये क्रांतिकारी जागरण और नये क्रांतिकारी ज्ञानोदय का यहीं संदेश है।

# ...झूठी आशा छोड़ो, सही लड़ाई से नाता जोड़ो

(पेज 1 का शेष)

खिलाफ केन्द्रीय ट्रेड यूनियन नेताओं की अगुवाई में पिछले एक दशक से लड़ी जा रही लड़ाइयां जीतने के लिए नहीं लड़ी जा रही हैं।

लेकिन, इसके बावजूद जब संघर्ष करना अस्तित्व की शर्त हो तो संघर्ष का कोई भी कार्यक्रम तात्कालिक तौर पर एक उम्मीद भी पैदा करता है। ऐसे में, अगर कोई समझौतापरस्त, अवसरवादी और गद्दार नेतृत्व भी अगुवाई कर रहा हो तो विकल्पहीनता में उसकी अगुवाई में लोग संघर्ष की राह में चल पड़ते हैं। आज मज़दूर आन्दोलन के सामने सबसे बड़ा संकट यही है कि आज कोई देशव्यापी क्रान्तिकारी नेतृत्व नहीं है जो निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों के खिलाफ हो रही इन बिखरी लड़ाइयों को एक सूत्र में पिरोकर न केवल एक देशव्यापी प्रतिरोध आन्दोलन की शक्ल दे सके वरन इन्हें पूंजीवाद-साम्राज्यवाद विरोधी जनमुक्ति संघर्ष का एक अंग बना सके। इसी शून्य का फायद आज का गद्दार नेतृत्व उठा रहा है। लड़ाइयों को दिशाहीन कर पूंजीवाद-साम्राज्यवाद की महत्वपूर्ण सेवा कर रहा है। हर नये संघर्ष के कार्यक्रम से जो तात्कालिक उम्मीद जगती है उसकी पराजय नाउम्मीदी को और अधिक गहरा कर जाती है। कहने की जरूरत नहीं कि पराजय से अधिक पराजित मानसिकता शासक वर्गों के लिए कितनी अधिक फायदेमन्द होती है।

इसलिए आज सबसे बड़ी ज़रूरत इस बात की है कि संघर्ष के नाम पर संघर्ष के प्रहसनों से किसी भी तरह की आशा बांधने या "अनुष्ठान ही सही, चलो कुछ तो हुआ" जैसे सन्तोष-भाव में जीने की मानसिकता से उबरा जाये। यह आत्मघाती होगा। न तो हवाई उम्मीदों में जीने की जरूरत है और न ही चुनौतियों-समस्याओं से घबराने या भविष्य से पूरी तरह नाउम्मीद हो जाने का समय है। विज्ञान और इतिहास हमें सच्चा क्रान्तिकारी यथार्थवादी होने की मांग करता है। यह हमसे आज नये सिरे से संगठित होने और मज़दूर आन्दोलन के क्रान्तिकारीकरण की नयी शुरुआत की मांग करता है।

**यदि जीतने के लिए लड़ना हो तो शुरुआत कहां से की जाये?**

पराजयों के सिलसिले को भंग करते हुए जीतने के लिए लड़ने की शुरुआत कहां से की जाये? इस सवाल पर 'बिगुल' के अगस्त 2000 अंक में हमने लिखा था:

हम एक बार फिर जोर देकर यह कहना चाहेंगे कि पूंजीवाद का कवच अभेद्य नहीं है। यदि मज़दूर वर्ग सही राजनीति पर संगठित होकर लड़े और व्यापक मेहनतकश अवाम की अगुवाई करे तो यह चमकीले पन्नी वाला कागज से बना साबित होगा। अत: पराजय की मानसिकता से मुक्त होना होगा। नये सिर से संघर्ष की, और एक लम्बे संघर्ष की ठोस तैयारी में जुट जाना होगा।

नहीं, ट्रेड यूनियनों से ही विमुख हो जाना आत्मघाती होगा। अलग से छोटी-छोटी यूनियनें बनाने से भी मज़दूर वर्ग बंटता जायेगा। ट्रेड यूनियनों के भ्रष्ट, नौकरशाह नेतृत्व से छुटकारा पाना होगा और इन्हें बुर्जुआ चुनावबाज और नकली वामपंथी दलों की जकड़बन्दी से मुक्त करना होगा। इसके लिए ट्रेड यूनियनों के भीतर मज़दूरों को अपने जनवादी अधिकारों के लिए लड़ना होगा और अपने जनवादी अधिकारों का इस्तेमाल करना होगा।

बुर्जुआ अर्थनीति की कमान बुर्जुआ राजनीति के हाथों में होती है। आर्थिक नीतियों की मार का मुकाबला करने के लिए मज़दूर वर्ग को राजनीति की कमान अपने हाथों में लेनी होगी। ट्रेड यूनियनों पर सही क्रान्तिकारी राजनीति का वर्चस्व स्थापित करना होगा। भूमण्डलीकरण के वर्तमान दौर में, अपने राजनीतिक अधिकारों के लिए लड़े बिना, अब छोटी-छोटी आर्थिक मांगों के लिए भी लड़कर जीत पाना मुश्किल हो गया है। मज़दूर वर्ग को अपने ऐतिहासिक मिशन को याद करना होगा और यह समझना होगा कि मौजूदा दौर की आर्थिक नीतियों का सही विकल्प इस व्यवस्था की चौहद्दी को तोड़कर ही हासिल किया जा सकता है। इस समझ के आधार पर व्यापक मज़दूर एकता कायम करके ही मज़दूर आन्दोलन को अर्थवादी-संसदवादी विभ्रमों से और साथ ही अराजकतावादी भटकावों से मुक्त करके क्रांतिकारी धार दी जा सकती है।

क्रांतिकारी मज़दूर राजनीति की वाहक शक्तियां आज देश भर में छोटे-छोटे ग्रुपों में बिखरी हुई हैं और एक अखिल भारतीय पार्टी के रूप में संगठित नहीं हैं। इन ग्रुपों का ट्रेड यूनियन राजनीति में प्रभाव और हस्तक्षेप भी देशव्यापी स्तर पर नगण्य है। लाइन सम्बन्धी अपने मतभेदों को हल करके एकजुट होने की प्रक्रिया को तेज करने के लिए उन्हें देश और दुनिया की नई परिस्थितियों का ठोस विश्लेषण करने और विचारधारात्मक भटकावों से मुक्त होने के साथ ही मज़दूर आन्दोलन में एक सही क्रान्तिकारी जनदिशा अपनाकर काम करना होगा। केवल तभी मज़दूर आन्दोलन में क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट आन्दोलन का प्रभाव-क्षेत्र विस्तारित किया जा सकता है इसके अन्योन्यक्रिया के तौर पर, मज़दूर आन्दोलन में भागीदारी की यानी मज़दूर वर्ग के बीच राजनीतिक प्रचार एवं उसके राजनीतिक आन्दोलनों तथा आर्थिक आन्दोलनों में भागीदारी की प्रक्रिया मज़दूर वर्ग की सही हरावल पार्टी के निर्माण एवं गठन की प्रक्रिया को भी तेज करेगी। मज़दूर वर्ग में क्रांतिकारी राजनीतिक प्रचार और मज़दूर वर्ग की क्रांतिकारी पार्टी खड़ी करने में आज क्रांतिकारी राजनीतिक मज़दूर अखबार की भूमिका बुनियादी तौर पर महत्वपूर्ण है।

एक शुरुआती व्यावहारिक कदम के तौर पर, व्यापक मज़दूर एकता की आवश्यकता पर बल देते हुए जगह-जगह, स्थानीय और इलाकाई पैमाने पर, मज़दूरों की ज्यादा से ज्यादा संख्या को इस बात के लिए तैयार किया जाना चाहिए और ट्रेड यूनियन नेतृत्व पर दबाव बनाया जाना चाहिए कि निजीकरण-उदारीकरण की नीतियों के विरुद्ध सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्र के उद्यमों के ज्यादा से ज्यादा मज़दूरों को साझा मोर्चों में – श्रमिक संघर्ष समन्वय मोर्चे जैसे प्लेटफार्मों पर एकत्र किया जाये। आगे चलकर ऐसे मोर्चों को कृषि क्षेत्र के मज़दूरों और अन्य असंगठित मज़दूरों के दायरों तक विस्तारित किया जाना चाहिए। इससे पहलकदमी क्रांतिकारी शक्तियों के हाथों में आने और मौकापरस्त नेतृत्व के पर्दाफाश के लिए अनुकूल स्थितियां तैयार होंगी। साथ ही, किसी स्वयंस्फूर्त मज़दूर उभार की सम्भावित स्थिति में, इससे आगे बढ़कर क्रांतिकारी राजनीति का नेतृत्व व्यापक स्तर पर स्थापित करने के लिए अधिक अनुकूल स्थितियां तैयार होंगी।

मज़दूर वर्ग में क्रांतिकारी राजनीतिक प्रचार की कार्रवाई का आज सर्वाधिक महत्व है, क्योंकि क्रांतिकारी राजनीति के बिना कोई क्रांतिकारी आन्दोलन हो ही नहीं सकता।

मज़दूर आन्दोलन के मौकापरस्त नेतृत्व की हालिया गद्दारी ने एक बार फिर हमें चेताने का काम किया है, सोचने के लिए झटका दिया है और संघर्ष की सही राह खोजने के लिए बेचैन किया है। यह बेचैनी बनी रहनी चाहिए। इसका ठण्डा पड़ना आत्मघाती होगा।''

## रघुवीर गीयर्स (आटोमोबाइल्स) लुधियाना

# अन्दर के हालात पर एक नज़र

दशमेश नगर लुधियाना का पुराना औद्योगिक इलाका है, जहां पर छोटी और मध्यम दर्जे की सैकड़ों स्टील फैक्टरियां लगी हुई हैं। रघुवीर गीयर्स के नाम से मशहूर रघुवीर आटोमोबाइल्स इसी दशमेश नगर की 12 नं. गली में स्थित है। यह एक रिहायशी इलाका होने के कारण फैक्टरियां बहुत तंग जगहों पर लगी हैं जिसमें आम तौर पर हालात यह है कि मज़दूरों को बहुत घुटन भरे माहौल में काम करना पड़ता है, नीम अंधेरी जगहों में सांस लेना तक मुश्किल होता है।

रघुवीर गीयर्स में काम करने के हालात इससे भी बदतर हैं। इस फैक्टरी में स्कूटर, मोटरसाइकिल के गीयर पार्ट्स बनते हैं, फोकल प्वाइंट्स पर स्थित इसकी दो अन्य इकाइयों में गीयर के कुछ हिस्से बनते हैं जिसका अन्तिम रूप दशमेश नगर इकाई में दिया जाता है।

यहां सभी मज़दूर दिहाड़ी पर काम करते हैं। मज़दूरों के लिए दिन भर में तैयार किये जाने वाले माल का कोटा तय कर दिया जाता है और उन्हें किसी भी हालत में यह तय कोटा पूरा करना होता है। ऐसा न करने पर मनमाने ढंग से पैसा काट लिया जाता है। इतना ही नहीं यहां 12-12 घण्टे की दो शिफ्टों में मज़दूरों को कमरतोड़ मेहनत करनी पड़ती है। 8 घण्टे नियमित काम और 3 घण्टे ओवरटाइम के जहां ओवरटाइम का पैसा लगभग नियमित घण्टे के समान ही होता है। अधिक से अधिक मुनाफा कमाने के लिए किस प्रकार मज़दूरों के खून-पसीने की एक-एक बूंद तक निचोड़ लिया जाये इसके लिए कारखाने के मालिक सभी नियम कानूनों को धता बताते हुए तरह-तरह के हथकण्डे अमल में लाते हैं। अनुभवी (कुशल) मज़दूरों की लगातार छंटनी की जाती और उनकी जगह आधी तनख्वाह पर नये मज़दूरों को काम पर रख लिया जाता है। इन नये मज़दूरों

के काम में कुशलता पाते ही, जब वे एक कुशल मज़दूर की तनख्वाह के हकदार हो जाते हैं, उन्हें छांट दिया जाता है और फिर उनकी जगह नये अकुशल मज़दूरों को लगा दिया जाता है। इस प्रकार बड़े साज़िशाना ढंग से फैक्टरी मालिक उन्हें संगठित होने से रोकते हैं। वे भविष्य निधि (पी.एफ.) के प्रावधानों से बच निकलते हैं और मज़दूरों के सिर पर छंटनी की तलवार लटका कर उन्हें कमजोर कर अपने खिलाफ एकजुट होने की तमाम संभावनाओं को, अपनी समझ से, खत्म कर देते हैं। जाहिर है ऐसी स्थिति में वहां मज़दूरों की कभी कोई यूनियन भी नहीं बन पाती।

रघुवीर गीयर्स के पांच विभागों – ग्राइंडर, क्रास, पैकिंग, मिलिंग और ए.डी.डी.ए. में बंटे कारखाने में काम करने वाले 175 मज़दूरों में सिर्फ 10-15 मज़दूर ही पक्की नौकरी पर (परमानेण्ट) हैं। शेष मज़दूर जाहिर है, कि सेवानिवृत्ति के बाद मिलने वाले पी.एफ. तथा पेंशन आदि लाभों से वंचित होते हैं। सेवा काल में भी कुछ एक को छोड़कर अधिकांश मज़दूरों की तनख्वाह 1800 रु. से भी कम होती है। इन्हें कोई बोनस नहीं मिलता।

फैक्टरी मालिकों की दलाली करने वाले कुछ फोरमैन मज़दूरों को चाय पीने तक की इजाजत इसलिए नहीं देते कि उतने समय काम का नुकसान होता है। उन्हें सिफ भोजन के लिए एक घण्टे का अवकाश मिलता है। इतना ही नहीं इन पर कड़ी नजर रखने के लिए और जानवरों की तरह जोते रहने के लिए मालिक ने हाल में ही पैकिंग, मिलिंग व ए.डी.डी.ए. विभागों में वीडियो कैमरे फिट करा दिये हैं। ऐसी हालत में यह बेवकूफी ही होगी कि उनसे किसी किस्म के सुरक्षा उपायों की उम्मीद की जाये।

इस तरह दमघोंटू माहौल और जानवरों से भी बदतर हालात में जहां एक ओर मज़दूर अपनी हड्डियां गलाने और गन्ने की तरह पेर दिये जाने पर मजबूर हैं वहीं दूसरी ओर यह भी अंदेशा बना हुआ है कि रिहायशी इलाके में बसे होने के कारण प्रदूषण के नाम पर रघुवीर गीयर्स सहित तमाम फैक्टरियां बंद कर उन्हें दाने-दाने का मोहताज बना दिया जाये। परन्तु स्थिति चाहे जो भी हो पूंजी की इस व्यवस्था में मारा तो मज़दूर ही जायेगा।

लुधियाना से एक मज़दूर

अन्याय,
असमानता,
शोषण-दमन के
विरुद्ध
**विद्रोह**
**न्यायसंगत**
**है!**
विद्रोह हमारा
जन्मसिद्ध
अधिकार है।
**विद्रोह**
**करो!**
विद्रोह से क्रान्ति की
ओर आगे बढ़ो!

**राहुल फाउण्डेशन से शीघ्र प्रकाश्य**

तीन बेहद जरूरी किताबें :-
सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) का इतिहास, पृष्ठ 400
माओ त्से-तुड. : कला साहित्य, विषयक एक भाषण और पांच निबन्ध पृष्ठ-48
माओ त्से-तुड. : दर्शन विषयक पांच निबन्ध, पृष्ठ- 124

प्रतियों के लिए सम्पर्क करें :
जनचेतना, डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226 020
email : janchetna@rediffmail.com

# लेनिन के साथ दस महीने

*– एल्बर्ट रीस विलियम्स*

एल्बर्ट रीस विलियम्स उन पांच अमेरिकी जनों में से एक थे जो अक्टूबर क्रान्ति के तूफानी दिनों के साक्षी थे। वे 1917 के बसंत में रूस पहुंचे। उस समय से लेकर अक्टूबर क्रान्ति तक, वे तूफान के साक्षी ही नहीं बल्कि भागीदार भी रहे। इस दौरान उन्होंने व्यापक जनता के शौर्य एवं सृजनशीलता के साथ ही बोल्शेविक योद्धाओं के जीवन को भी निकट से देखा। लम्बे समय तक वे लेनिन के साथ-साथ रहे। क्रान्ति के बाद जुलाई, 1918 तक उन्होंने दुनिया भर की प्रतिक्रियावादी ताकतों से जूझती पहली सर्वहारा सत्ता के जीवन-संघर्ष को निकट से देखा।

स्वदेश लौटकर रीस विलियम्स ने दो किताबें लिखीं – 'लेनिनः व्यक्ति और उनके कार्य' तथा 'रूसी क्रान्ति के दौरान'। ये दोनों पुस्तकें एक जिल्द में 'अक्टूबर क्रान्ति और लेनिन' नाम से राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ से प्रकाशित हो चुकी हैं।

हम रीस विलियम्स की पूर्वोक्त पहली पुस्तक का एक हिस्सा 'बिगुल' के पाठकों के लिए प्रस्तुत कर रहे हैं।

*– संपादक*

### 6. व्यावहारिक कामों से ही लेनिन ने जनता की नब्ज़ पहचानी

जनता के बहुत निकट रहने से कम्युनिस्ट नेताओं को लोक-भावना के चढ़ाव-उतार की जानकारी थी।

लेनिन को लोगों की भावनाओं और मनोभावों को जानने के लिए किसी आयोग के जांच-कार्य की जरूरत नहीं थी। उस व्यक्ति को, जो स्वयं भूखा रहता हो, एक अन्य भूखे की मनोभावना के बारे में अन्दाज लगाने की जरूरत नहीं होती। उसे तो यह स्पष्ट ही होता है। लोगों के साथ भूखे रहकर तथा जाड़े में उनके साथ ठिठुरते हुए दिन गुजारकर लेनिन उनकी भावनाओं को महसूस कर रहे थे, उन्हीं की भांति सोच रहे थे और उन्हीं की इच्छाओं-आकांक्षाओं को अभिव्यक्त कर रहे थे।

कम्युनिस्ट पार्टी निश्चय ही इसी रूप में कार्य करने का प्रयत्न करती है – वह जनता के ख्यालों को व्यक्त करती है, उसी की भावनाओं को वाणी देती है। कम्युनिस्टों का कहना था, "हमने सोवियतों की रचना नहीं की। वे जन-जीवन से उत्पन्न हुईं। हमने अपने दिमाग़ से किसी योजना को गढ़कर उसे जनता पर नहीं थोपा। इसके विपरीत जनता ने ही हमारा कार्यक्रम निर्धारित किया। वह मांग कर रही थी, 'जमीन किसानों को', 'कारखाने मज़दूरों को' दो और 'सारी दुनिया में शान्ति' क़ायम हो। हमने अपने फरहरों पर इन नारों को अंकित कर लिया और उनके साथ सत्तारूढ़ हुए। जनता की भावनाओं और मनोभावों को समझने में ही हमारी शक्ति निहित है। वस्तुतः हमें जनता को समझने की ज़रूरत नहीं है। हम तो स्वयं जनता हैं।" निश्चय ही यह बात सामान्यतया कम्युनिस्ट नेताओं पर लागू होती थी, जो उन पांच युवा कम्युनिस्टों की भांति, जिनसे पहली बार हमारी भेंट पेत्रोग्राद में हुई थी, लोगों के ही अभिन्न अंग थे। परन्तु लेनिन जैसे बुद्धिजीवियों पर यह बात कैसे लागू होती है – वे कैसे जनता की ओर से बोल सकते हैं? वे कैसे जनता के दिल और दिमाग़ को समझ सकते हैं? सामान्यतया इसका उत्तर यही होगा कि उनके लिए कभी ऐसा सम्भव नहीं हो सकता। यह सही है। परन्तु जैसा कि तोलस्तोय ने चरितार्थ किया है, इसके साथ समान रूप से यह भी सही है कि जो जनता की तरह जीवन व्यतीत करता है, वह जनता से अलग-थलग रहने वाले व्यक्ति की तुलना में जन-समुदाय के बहुत निकट आ जाता है। इस दृष्टि से लेनिन अपने विरोधियों की तुलना में बेहतर स्थिति में थे। उन्हें उराल के खनिक, वोल्गा के किसान अथवा सोवियत सैनिक की भावनाओं के बारे में अनुमान लगाने की कोई आवश्यकता नहीं थी। वे उनकी भावनाओं को यदि पूरी तरह नहीं, तो काफी हद तक तो जरूर जानते थे, क्योंकि उनके अनुभव स्वयं लेनिन के अनुभव थे। इसीलिए जब उनके विरोधी अन्धकार में भटक रहे थे, तो लेनिन उस व्यक्ति की भांति विश्वास के साथ लक्ष्य की ओर अग्रसर थे, जो अपने रास्ते को अच्छी तरह जानता है।

सोवियत नेताओं द्वारा कम्युनिज़्म के सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप देना उन महत्वपूर्ण कारकों में से एक है, जिन्होंने सोवियत सरकार को शक्तिशाली बनाया। रूस के बाहर इस तथ्य पर या तो ध्यान नहीं दिया गया अथवा इसके महत्व को कम आंका गया। परन्तु लेनिन ने इसके महत्व को नहीं घटाया। उन्होंने सोवियत प्रणाली में इसे अनिवार्य समझा। महत्वपूर्ण घटनाओं में फंसे रहने के बावजूद उन्होंने समय निकालकर अपनी पुस्तक 'राज्यसत्ता और क्रान्ति' में इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया कि कम्युनिज़्म के सिद्धान्तों को व्यवहार में लाना ही सर्वहारा वर्गीय राज्यदर्शियों के लिए एकमात्र सही मार्ग है। यह कठिन मार्ग है। कुछ ही इसका अनुसरण करते हैं।

### 7. जनता के सम्मुख लेनिन

इन कठिनाइयों और रात-दिन की अग्निपरीक्षा की घड़ियों के बावजूद, लेनिन लगातार सार्वजनिक सभाओं में भाषण करते हुए परिस्थितियों का संक्षिप्त-सजग विश्लेषण करते, कठिनाइयों को दूर करने के उपाय सुझाते और अपने श्रोताओं से उन्हें अमल में लाने के लिए क्रियाशील होने का आग्रह करते। लेनिन के भाषणों से अशिक्षित लोगों में उत्साह और उमंग की जो लहर दौड़ जाती, पर्यवेक्षकों को इससे बड़ा आश्चर्य होता। उनके भाषणों में तेजी, प्रवाहशीलता और तथ्यों की भरमार रहती थी, मगर जिस प्रकार मंच पर उनकी भेष-भूषा अनाकर्षक होती थी, उसी प्रकार उनके भाषण साधारणतः अलंकारिक भाषा, भावुकता तथा विलक्षणता से शून्य होते थे। उनमें चिन्तन के लिए भरपूर सामग्री रहती थी और उनकी भाषण-शैली केरेन्स्की की भाषण-शैली के सर्वथा प्रतिकूल थी। केरेन्स्की आकर्षक व्यक्ति और भाषण देने की कला में दक्ष था। स्वभावतः कोई भी यह सोच सकता था कि वह अपनी वक्तृत्व-शक्ति और लोगों की भावनाओं को उभारने की कला से "अनभिज्ञ और अशिक्षित रूसियों" को अपनी ओर मोड़ सकता है। मगर वे उसकी ओर नहीं झुके। यह एक अन्य रूसी असंगति है। लोग इस प्रख्यात सार्वजनिक सुवक्ता की लच्छेदार और चटपटी बातें सुनते और उसके बाद लेनिन को, उस विद्वान और तर्कशील व्यक्ति को, उनके संतुलित विचारों एवं विद्वतापूर्ण उद्गारों को अपनी निष्ठा अर्पित करते।

(अगले अंक में जारी)

(पेज 7 का शेष)

## सही लाइन पर संगठित...

है। कर्ज तले दबे ये मज़दूर मालिकों के चंगुल में बुरी तरह फंस जाते हैं। जब तक कर्ज नहीं उतरता तब तक ये मज़दूर मालिकों के डंडे के नीचे काम करने पर अभिशप्त होते हैं। इनकी हैसियत बंधुआ मज़दूरों के समान हो जाती है। इन मज़दूरों को लूट-दर-लूट का शिकार बनाने के लिए तथा कर्ज के जाल में फंसाये रखने के लिए कई भट्ठा मालिक यह तरीका अपनाते हैं कि वे मज़दूरों को नक़द अदायगी करने के बजाय अपनी या अपने किसी रिश्तेदार की दुकान से रोजमर्रा का सामान उधार लेने को कहते हैं। फिर इस उधार पर ब्याज लगाकर मज़दूरों को लूटते हैं। जलालत भरी काम की परिस्थितियां, थका मारने वाली मेहनत एवं आर्थिक तंगी से परेशानहाल मज़दूरों को नशे की शरण में जाने को धकेला जाता है। शराब खरीदने के लिए तो जेब में पैसे होते नहीं हैं, ऐसे में भट्ठा मालिक मज़दूरों के हाथों में पर्चियां थमा देते हैं, जिनसे मज़दूर किसी नज़दीक वाले ठेके से शराब प्राप्त कर सकते हैं। इस तरह सौदे-पत्ते की दुकानों और शराब के ठेके द्वारा मज़दूरों की लूट-दर-लूट का यह सिलसिला उनकी मज़दूरी को पहले ही हड़प जाने तथा मालिकों का कर्जदार बन जाने का एक जरिया बनता है। इसके अलावा मालिक मज़दूरों को दब्बू, हीन तथा आज्ञाकारी बनाये रखने के लिए जोर-जबरदस्ती का भी इस्तेमाल करते हैं। मज़दूरों को कदम-कदम पर झिड़का जाता है, गाली-गलौज की जाती है तथा मारा-पीटा भी जाता है। पुलिस से पिटाई करवाई जाती है। थाने-कचहरी में कोई सुनवाई न होने के कारण तथा अपनी असरदार, लड़ाकू संगठित ताकत न होने से मज़दूर इस सब के आगे बेबस, लाचार तथा कमजोर बन कर रह जाते हैं।

मजदूरों का अधिक से अधिक से खून निचोड़ने के लिये मालिक बेगार के अलग-अलग रास्ते अपनाता है। जैसे पथेरों को ईंटें पाथने के लिए जगह तैयार करने का कोई पैसा नहीं दिया जाना। घोड़ी काट (पाथी गयी 120 ईंटों को 100 मानना) के जरिये मज़दूरों की मेहनत का एक हिस्सा हड़प लेना इत्यादि कई रास्ते हैं। पिछले कुछ समय में मज़दूरों के संगठित होने से बेगार के इन रूपों में कुछ कमी आई है, मगर कई जगहों पर ये अभी भी प्रचलित हैं।

भट्ठा उद्योग में मज़दूरों की बेरहम लूट को सरकारी तंत्र की मौन स्वीकृति होती है। जिस दबाव तथा जलालत भरी कार्य परिस्थितियों में मज़दूर काम करने के लिये मजबूर हैं, उस सबके बारे में सरकार और उसकेक अधिकारियों को न सिर्फ जानकारी है, बल्कि वे ऐसे हालात बनाये रखने में भट्ठा मालिकों की सहायता करते हैं। मज़दूरों की मेहनत हड़पने के लिये रेट खुद सरकार द्वारा तय किये जाते हैं। भट्ठा मालिकों का जहां बस चलता है वहां वे ये रेट लागू करने से इंकार कर देते हैं। इनको लागू करवाने में सरकार उसके अधिकारियों की कोई दिलचस्पी नहीं होती।

**सुखविन्दर**

**पंजाबी पत्रिका 'सुर्ख रेखा' में छपी रिपोर्ट के आधार पर**

पंजीयन संख्या - 71980/99 डाक पंजीयन संख्या - LW-NP-349-2000

# 26 जनवरी, 15 अगस्त

किसकी है जनवरी, किसका अगस्त है?
कौन यहां सुखी है, कौन यहां मस्त है?

सेठ है, शोषक है, नामी गला-काटू है
गालियां भी सुनता है, भारी थूक-चाटू है
चोर है, डाकू है, झूठा-मक्कार है
कातिल है, छलिया है, लुच्चा-लबार है
जैसे भी टिकट मिला
जहां भी टिकट मिला
शासन के घोड़े पर वह भी सवार है
उसी की जनवरी छब्बीस
उसी का पन्द्रह अगस्त है
बाकी सब दुखी है, बाकी सब पस्त है ...

कौन है खिला-खिला, बुझा-बुझा कौन है
कौन है बुलन्द आज, कौन आज मस्त है?
खिला-खिला सेठ है, श्रमिक है बुझा-बुझा
मालिक बुलन्द है, कुली-मजूर पस्त है
सेठ यहां सुखी है, सेठ यहां मस्त है
उसकी है जनवरी, उसी का अगस्त है

पटना है, दिल्ली है, वहीं सब जुगाड़ है
मेला है, ठेला है, भारी भीड़-भाड़ है
फ्रिज है, सोफा है, बिजली का झाड़ है
फैशन की ओट है, सब कुछ उघाड़ है
पब्लिक की पीठ पर बजट का पहाड़ है
गिन लो जी, गिन लो, गिन लो जी, गिन
लो
मास्टर की छाती में कै ठो हाड़ है!
गिन लो जी, गिन लो, गिन लो जी, गिन
लो
मज़दूर की छाती में कै ठो हाड़ है!
गिन लो जी, गिन लो, गिन लो जी, गिन
लो
घरनी की छाती में कै ठो हाड़ है!
गिन लो जी, गिन लो, गिन लो जी, गिन
लो
बच्चे की छाती में कै ठो हाड़ है!
देख लो जी, देख लो, देख लो जी, देख
लो
पब्लिक की पीठ पर बजट का पहाड़ है!

मेला है, ठेला है, भारी भीड़-भाड़ है
पटना है, दिल्ली है, वहीं सब जुगाड़ है
फ्रिज है, सोफा है, बिजली का झाड़ है
फैशन की ओट में सभी कुछ उघाड़ है
महल आबाद है, झोपड़ी उजाड़ है
ग़रीबों की बस्ती में उखाड़ है, पछाड़ है
धत् तेरी, धत् तेरी, कुच्छों नहीं! कुच्छों नहीं
ताड़ का तिल है, तिल का ताड़ है
ताड़ के पत्ते हैं, पत्तों के पंखे हैं
पंखों की ओट है, पंखों की आड़ है
कुच्छों नहीं, कुच्छों नहीं ...
ताड़ का तिल है, तिल का ताड़ है
पब्लिक की पीठ पर बजट का पहाड़ है

किसकी है जनवरी, किसका अगस्त है!
कौन यहां सुखी है, कौन यहां मस्त है!
सेठ ही सुखी है, सेठ ही मस्त है
मंत्री ही सुखी है, मंत्री हीं मस्त है
उसी की है जनवरी, उसी का अगस्त
है

## राज कर रहे क़फनखसोट-मुर्दाखोर

देश में 40 फीसदी आबादी ग़रीबी रेखा से नीचे का जीवन यापन कर रही है। इस श्रेणी में वह आबादी आती है जिसकी ग्रामीण क्षेत्र में प्रति व्यक्ति मासिक उपभोग व्यय 49.09 रु. तथा शहरी क्षेत्र में 56.65 रुपये से कम है। यानी 40 करोड़ लोगों की वह आबादी जो प्रतिदिन दो रुपये से कम व्यय में जीवन निर्वाह के लिए मजबूर है। देश के औसत भारतीय की दैनिक आय रुपये 29.50 है।

दूसरी तरफ देश के राष्ट्रपति पर रोज 4 लाख 14 हजार रुपये, प्रधनमंत्री कार्यालय पर प्रतिदिन 2 लाख 38 हजार रुपये खर्च होते हैं। केन्द्रीय मंत्रिमण्डल का दैनिक खर्च 15 लाख रुपये है, जबकि संसद के एक घण्टे की कार्यवाही पर 16 लाख रुपये खर्च होते हैं। देश के विशिष्ट व्यक्तियों की सुरक्षा पर (एस.पी.जी. व एम.एस.जी. दस्तों पर) प्रतिवर्ष 1 अरब, 61 करोड़ रुपये तथा मंत्रिपरिषद की सुरक्षा पर 50 करोड़, 52 लाख रुपये खर्च होते हैं।

देश की 60 फीसदी आबादी की सालाना आय 6000 रुपये है जबकि बहुराष्ट्रीय कम्पनियों में काम करने वाले 10 हजार मैनेजरों को प्रतिवर्ष 50 लाख रुपये से ज्यादा तनख्वाह मिलती है।

महज ये चन्द आंकड़े ही इस बात का बयान कर रहे हैं कि देश की व्यापक मेहनतकश आबादी लुट रही है, घुट रही है और पिस रही है। और हमारे कथित जनप्रतिनिधि, ऐश्वर्य के टापू बसा रहे हैं, सुख के समुद्र में गोते लगा रहे हैं। क्या देश की भूखी-नंगी जनता को इन ऐशगाहों को ध्वस्त नहीं कर देना चाहिए?

# वी.आर.एस. से आपने नहीं, बैंक ने आपको लूटा है

बीमा के निजीकरण पर एक मित्र से बात चल ही रही थी कि एक सज्जन आ पहुंचे। लपककर मित्र से उन्होंने हाथ मिलाया और बड़े ही उत्साह और जोश में कहा "मैं बैंक को लूट कर आ रहा हूं।"

हम सब अचम्भित रह गये। मित्र ने पूछा - "बैंक को लूटकर आ रहे हैं! क्या मतलब?"

उक्त सज्जन ने कहा "वी.आर एस. (स्वैच्छिक अवकाश योजना) लेकर आया हूं। बैंक का 12 लाख रूपया मैंने लूट लिया। पेंशन अलग से।"

"बारह लाख! मगर कैसे ?" मित्र ने पूछा।

"छह लाख वी. आर .एस. के तहत और छह लाख फण्ड का - नौ लाख नगद और तीन लाख रूपये का बाण्ड ।" उन्होंने जवाब दिया।

मित्र ने उन्हें समझाने का प्रयास किया कि तुम्हें तो बैंक ने ही लूटा है। उन्होंने तर्क दिया कि फण्ड का छह लाख तो तुम्हारा पैसा है। वह तो तुम्हें मिलता ही। बाकी छह लाख में से महज तीन लाख ही तो नगद मिला। मगर वे सज्जन कुछ भी मानने को तैयार नहीं थे। सिर पर बारह लाख रुपये का भूत जो सवार था।

मैंने बातचीत में बड़ी ही विनम्रता से हस्तक्षेप किया। मैंने उन्हें बताया कि कैसे बैंक ने बारह लाख का झांसा देकर उन जैसे सवा लाख लोगों को खरीद लिया। उसने दो अरब पचास करोड़ का भुगतान यूं ही नहीं किया है। इतने पैसे से उसने सवा लाख पद खरीद लिए, सवा लाख लोगों को बेरोजगारों की फौज में शामिल कर दिया, सवा लाख लोग नौकरियों से वंचित रहेंगे। पहले से ही - कम्प्यूटरीकरण के बाद से ही - बैंकों में भर्तियां बंद थीं। कर्मचारियों की इस भारी कमी से प्रति कर्मचारी उत्पादकता (अतिरिक्त श्रम शक्ति के दोहन) को काफी बढ़ा दिया है।

फिर मैंने उनसे बताया कि इस समय पूरी दुनिया में भयानक मंदी चल रही है। नये-नये उपभोक्ता सामानों से बाजार पटा हुआ है लेकिन खरीददार नहीं हैं। उदारीकरण के दौर में, तमाम कोशिशों के बावजूद, पूंजीवाद इस महामंदी के दुश्चक्र से बाहर नहीं निकल पा रहा है। इसके लिए वैश्विक धारातल पर खेल खेलें जा रहे हैं। आपको जो बारह लाख (नगद नौ लाख) मिला है अथवा सवा लाख बैंक कर्मियों को ढाई अरब रुपये का जो भुगतान हुआ है, वह धन आखिर जायेगा कहां? इसका बड़ा हिस्सा बाजार के ही हवाले होगा। पूंजीपतियों का माल बिकेगा, तरह-तरह के उपभोक्ता सामग्रियों को खरीदने के लिए लोग टूट पड़ेंगे, मंदी से थोड़ी राहत मिलेगी।

दूसरे, ये पैसे या तो बैंकों के "फिक्स डिपाजिट" में जाएंगे अथवा शेयर बाज़ार के अनुत्पादक घिनौने "ब्लैक होल" में समा जाऐंगे। इन रुपयों को भी तो पूंजीपतियों की थैली में ही घूम-फिर कर चले जाना है।

मैंने उनको वर्मन कमेटी की, याद दिलायी, नरसिंहम कमेटी के उन रिपोर्टों की भी जिसमें एक लाख, सतहत्तर हजार चार सौ पांच बैंक कर्मी फालतू बताये गये थे, कर्मचारियों पर लोड बढ़ाने की बात की गयी थी। वी.आर. एस. लागू होने के साथ ही बैंकिंग सेवा भर्ती बोर्ड खत्म कर दिया गया यह भी याद दिलाया।

एक तरफ बैंकों में छंटनी, दूसरी तरफ राष्ट्रीकृत बैंकों में सरकारी भागीदारी घटाकर 33 प्रतिशत करके बैंकों के निजीकरण की दिशा में सरकार द्वारा उठाये गये महत्वपूर्ण कदम की भी चर्चा हुई। लेकिन उनके लिए तो बस यही महत्वपूर्ण था कि उन्हें बारह लाख रुपये मिल गये।

उनके लिए यह भी बात कोई मायने नहीं रखती है कि तीन बैंकों -युनाइटेड बैंक, यूको बैंक और इण्डियन बैंक - के 80 हजार कर्मचारियों को 130 करोड़ रुपयों के एरियर का तो भुगतान नहीं हो रहा है जबकि ढाई अरब रुपये वी.आर.एस. पर सरकार खर्च कर दे रही है।

एक वह दौर था, जब बैंकों के राष्ट्रीयकरण के लिए बैंक कर्मचारियों ने लम्बे जुझारू संघर्ष किये थे। राष्ट्रीयकरण के साथ ही उन्होंने काफी सहूलियतें हासिल की थीं। लेकिन ट्रेड यूनियन नेतृत्व ने धीरे-धीरे बैंक आंदोलन को पेंशन-बोनस-भत्ते-इंक्रीमेंट- प्रमोशन-ट्रांसफर के चक्रव्यूह में ऐसा फंसाया कि वह अर्थवाद के गहरे दलदल में जा धंसा। उदारीकरण के इस दौर में जबकि निजीकरण-छंटनी- तालाबन्दी की आंधी चल रही है, बैंकों को पुन: देशी-विदेशी पूंजीवादी लुटेरों के हाथों में सौंपने की पूरी तैयारी हो चुकी है, सरकार भी नये निजी बैंक खोलने की छूट दे चुकी है, तब संघर्ष की कौन कहे, लोग वी. आर.एस. लेकर घर भाग रहे हैं।

दरअसल, पिछले एक दशक पूर्व, जब नयी आर्थिक नीति की शुरुआत हुई थी, तभी यह साफ हो गया था कि देशी पूंजीपतियों और विश्व साम्राज्यवादी शक्तियों की गिद्ध दृष्टि देश के वित्तीय संस्थानों - बैंक, बीमा आदि पर है। इन दोनों ही सेक्टरों में मुख्य शक्ति वामपंथी ट्रेड यूनियनों (एटक, सीटू) के पास थी। अन्य चुनावबाज पार्टियों से जुड़ी यूनियनों (इंटर, बी.एम.एस. एच.एम.एस. वगैरह) से तो वैसे भी कोई उम्मीद नहीं थी, इनकी शक्ति भी तुलनात्मक रूप से कम थी। लेकिन चुनावी राजनीति में आकण्ठ डूबे और सत्ता सुख के लिए ललचाए वामपंथी पार्टियों ने ही जब परिवर्तन की राह छोड़ दी थी, तो उनसे जुड़ी ट्रेड यूनियनों से भी लड़ने की उम्मीद भला क्या की जा सकती है।

हुआ यह कि क्रान्तिकारी धार खो चुकी इन मठाधीश ट्रेड यूनियनों ने मज़दूर-कर्मचारी विरोधी 'नयी आर्थिक नीति' का आनुष्ठानिक विरोध करते हुए भी सहयोग का रुख अपनाए रखा। इनमें हड़तालें भी होती रहीं और नेतृत्व धीमी जहर से लोगों को मारता भी रहा। गत्ते की तलवार से वे लड़ते भी रहे और कागजी बाघ से वे लोगों को डरवाते भी रहे। धीरे-धीरे लोगों की मानसिकता बदलती गयी, लड़ने की क्षमता क्षीण होने लगी। सरकार ने भी उचित मौका देखा और उन्हें वी.आर. एस. का 'लालीपाप' थमा दिया। स्थिति यह बन चुकी है कि अवकाश ले चुके ये सवा लाख बैंककर्मी अपनी अलग यूनियन बना रहे हैं। अब पुरानी यूनियनों और अवकाश प्राप्त कर्मियों की यूनियनों के बीच गलत युद्ध का एक नया मोर्चा खुल गया है। स्थितियां जितनी विपरीत होती जा रही हैं, संघर्ष की धार उतनी ही भोथरी होती जा रही है।

आज ज़रूरत है, इस स्थिति को समझने की, अपनी मानसिकता बदलने की। इस सच्चाई को समझना ही होगा कि वी.आर.एस. से आपने नहीं बैंक ने आपको लूटा है।

– शरद कुमार

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी डा. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वाणी ग्राफिक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोजिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन, लखनऊ।
संपादक मण्डल : डा. दूधनाथ, मुकुल। सम्पादकीय पता : 69, बाबा का पुरवा, पेपर मिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006. सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ।